आप किधर जा रहे हैं ?

सद्गुरवे नमः

आप किधर जा रहे हैं ?

अभिलाषदास

प्रकाशक :

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर

राजादरवाजा

वाराणसी

सत्कबीराब्द ५७६

सं० २०३२ सन् १९७५

तृतीयावृत्ति

मूल्य २ रुपया

मुद्रक —

श्री विश्वेश्वर प्रेस

बुलानाला

वाराणसी

समर्पित

साधु-सज्जनों के करकमलों में, जो कटु-मीठी-किसी
भी प्रकार की सत्सम्मति सुनने एवं
मानने तथा अपनी त्रुटियों
को देखने और निका-
लने में प्रसन्न
रहते हैं।

निवेदन

इस पुस्तक में चालीस श्रेणियोंके मनुष्यों के गुण-दोषों की आलोचनायें करके उन्हें सन्मार्ग पर चलने के लिए सम्मति दी गयी है। इसके सभी प्रकरण छोटे-छोटे हैं। ऐसा करने का हेतु यह है कि चालीसों-प्रकरणों में उलट-पलट कर सभी प्रकार की विवेचनायें एवं शिक्षायें आ गयी हैं। यदी सभी प्रकरणों में विस्तार किया जाता, तो अक्षम्य पुनरुक्ति दोष संभव था। इसके अतिरिक्त इनको लिखते समय यह भी भाव था कि पाठकगण थोड़े-थोड़े में प्रेरणाप्रद शिक्षा प्राप्त करें।

चालीस श्रेणियों के जिन मनुष्यों पर इस पुस्तक में चर्चा की गयी है; उनमें से मैं स्वयं बाहर नहीं हूं। मुझे अपनी श्रेणी के कर्तव्य का पालन पहले करना चाहिये।

आलोचना करते समय यदि वाक्यों में कहीं कर्कशता आ गयी हो, उसको सहृदय पाठक-पाठिका क्षमा करते हुए, मधुकरवत् गुण-ग्रहण पर ध्यान देंगे।

फाल्गुन शुक्ल
वि०सं० २०२३

विनम्र
अभिलाषदास

सद्गुरवे नमः

आप किधर जा रहे हैं ?

सूचीपत्र

सद्गुरवे नमः

आप किधर जा रहे हैं ?

(१)

यदि आप माता-पिता हैं !

माता मानवकी जननी है, अतः आप के ऊपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। साँचा जैसा होगा, उसमें ढली वस्तु वैसा ही आकार धारण करेगी। माता मानव का साँचा है। अत: मानव के कल्याण के लिये माता को सदाचरण एवं सद्गुण-सम्पन्न होना चाहिये। आप माता-पिता हैं, आप जैसे बोलेंगे, जैसे करेंगे, बच्चे वैसे ही तो सीखेंगे ! बच्चों के बनने-बिगड़ने के कारण प्रायः आप ही हैं। फिर पीछे बच्चों को दोष मत देना। यदि आप अपना कर्तव्य-पालन नहीं करते, तो सोचें आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! बच्चों का दुलार पाँच वर्ष की अवस्था तक ही रखना ठीक है। फिर पाँच से सोरह वर्ष की अवस्था तक उन पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए। वे कोई बुराई न करने पावें। यदि इस

अवस्था में बच्चों का अधिक दुलार करेंगे, तो वे बिना खराब हुए न रहेंगे। बच्चों पर कड़ी दृष्टि रखने का तात्पर्य यह न समझ लेना चाहिये कि उनको गाली या मार देना ! नहीं नहीं, सावधान! गाली मार से बच्चे पतित, दब्बू तथा कुकर्मी हो जायँगे। केवल उनके दोषों को देखते रहें, वे कोई खोटा कर्म न करने पावें। किसी गल्ती पर कोमलता तथा गम्भीरता से समझा कर उन्हें ठीक मार्ग पर लाओ आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा डाँट सकते हो, परन्तु अपशब्द भूल कर न निकालना चाहिये।

ध्यान रहे! पहले आप अपने को सुधारें, फिर बच्चे अपने आप सुधरेंगे। आप में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं है, जो मुख्य वस्तु है। बच्चों के किशोर या युवा हो जाने पर भी, उनके सामने आप लोग विषय-लोलुप बने हैं। फिर बच्चों पर इसका कैसा बुरा प्रभाव पड़ेगा ? आप लोगों का शौकिनीपन अभी बच्चों—जैसा है। पान, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, मदिरा, मांस आदि दुर्व्यसन यदि आपके नहीं छूटे, तो इससे बच्चे कैसे बचेंगे ? सोचिये। आप किधर जा रहे हैं ?

ईर्ष्या, क्रोध, काम, मद, मत्सर, छल, कपट, असत्य भाषण, हिंसा, चोरी, व्यभिचार, अशौचपन,

मलीनता यदि आप के नहीं छूटे हैं, तो बच्चों के सुधार का क्या मार्ग है। क्या आप यह नहीं जानते कि बच्चों के शिक्षा पाने के लिये आप का घर ही मुख्य पाठशाला है ! अथवा बच्चे जहाँ रहते हैं, वहाँ का वातावरण ही, उनके भविष्य जीवन का अलक्षित रूप से निर्माण करता रहता है !

ध्यान रहे ! आप का रोज-रोज नाच, नाटक तथा सिनेमा देखना होता है, क्लब में आप का नम्बर आगे रहता है। ताश, जूआ तथा चौसर में तो आप दुनिया को भूले रहते हैं। फिर भी आप अपनी भविष्य-पीढ़ी का सुधार चाहते हैं, तो क्या सम्भव है ? पहले ही सुधारें, पीछे बच्चों को दोष न देना कि लड़का कलियुगी निकला।

ध्यान रहे ! आप के कपड़े गन्दे रहते हैं, दाँत मैले, नाखून-बाल बड़े-बड़े, घर-दुवार मानो बूचड़-खाना है। इस वातावरण में बच्चे पलकर क्या बनेंगे ? आप लोग सदैव कलह, लड़ाई, ईर्ष्या तथा बेईमानी-धोखेबाजी एवं मलीन आचरण करके वातावरण दूषित कर दिये हैं। फिर इस वातावरण में बच्चों के सुधारने का क्या आधार है ? आप स्वयं रावण-कंस बने रहना चाहते हैं और बच्चों को ध्रुव या राम के रूप में देखना चाहते हैं। यह कैसे हो

सकता है ? अतएव बच्चों के सुधार के लिये पहले आप लोग अपना सुधार करें और तब उनको भी सुधारें ।

ध्यान रहे ! बच्चों को यदि आप सद्‌विद्या नहीं पढ़ाते, साधु-संगत नहीं कराते, उन्हें आचार की शिक्षा नहीं देते या दिलाते, तो निश्चय आप अपने कर्तव्य से च्युत हो रहे हैं ।

ध्यान रहे । पुत्र के विवाह में लड़कीवालों से दहेज माँगना यह पाप-प्रथा है । आजकल यह अधिक जोर पकड़ रही है । इसके कारण बहुत से लोग अपनी पुत्रियों के विवाह करने में असमर्थ हो रहे हैं । लड़के-वालों को चाहिये कि इस पाप-प्रथा का तत्काल त्याग करें ।

ध्यान रहे ! कुछ लोग तो ऐसे गिरे-गिराये होते हैं कि जो लड़के वालों से पैसा लेकर अपनी लड़की का विवाह करते हैं । कितने लोग रुपये लेकर अपनी लड़की को बुड्ढे के हाथों में दे देते हैं । ये महापतित हैं । ऐसा किसी को भी नहीं करना चाहिये ।

यदि आप पुत्र या पुत्री हैं !

आप जिस माता-पिता से उत्पन्न हुए हैं, उनकी जीवन पर्यन्त सेवा करना, उनकी अच्छी आज्ञाओं का पालन करना, आपका पुनीत कर्तव्य है। माता-पिता ने आप को तन दिया, सेवा किया, मल-मूत्र धोया, खिला-पिला, पाल-पोष कर जवान किया, पढ़ाया-लिखाया तथा बुद्धि दिया और अपने सारे घर-दुवार, खेती-बारी, धन-सम्पत्ति को तुम्हें अर्पित कर दिया। कितना तुम्हारा उपकार किया ?

भले आदमी ! आप इतने नमकहरामी निकले, कि माता-पिता की सेवा करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना कौन कहे, उनसे आप ठीक से बोलते नहीं। उनको आप अपशब्द कहते, गाली देते और मार तक देते हैं। भला ! आप ही के समान एक दुष्ट लड़का आप के भी आगे हो जाय, तो आपकी क्या दशा करेगा ? आप बैठे-बैठे हवाई महल बनाते रहते है, अपने भविष्य-सन्तान से सुख-सेवा प्राप्त करने की मीठी-मीठी स्मृति में निमग्न हैं। परन्तु यह तो विचारिये, कि आप अपने पिता का सन्तान बनकर उनको कितना सुख देते हैं। विचारिये, आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! एक माता-पिता अनेक पुत्र-पुत्रियों को रक्षा कर लेते हैं। परन्तु अनेक पुत्र मिलकर भी माता-पिता की सेवा नहीं कर पाते। यह कितना पाप है। यदि आप स्त्री का मुख देखकर तथा उसकी बात सुनकर अपने माता-पिता से मुख मोड़ लिए हैं। "सुत मानहिं मात-पिता तबलों। अबलानन देख नहीं जबलों॥ ससुरारि पियारि लगी जबते। रिपु रूप कुटुम्ब भये तब ते॥" ये आचरण यदि आप में उतर आये हैं; तो आप पूरे कलियुगी लड़के हो गये, अभी भी आप अपने को सम्हालें।

ध्यान रहे! माता पिताकी वृद्धावस्थामें तथा उनके रुग्ण होने पर आप उनकी सेवा करें, उनके मल-मूत्रों को धोवें। गृहस्थ-पुत्र का यह परम कर्तव्य है। आप पिता के, कुल के तथा अपने नाम को उज्ज्वल करें, धप्पा न लगावें। माता-पिता दोनों आदरणीय हैं, तिसमें माता का दर्जा अधिक ऊँचा है। आप नित्य माता-पिता तथा पूज्य जनों का प्रणाम बन्दगी[1] करें। माता-पिता की आज्ञा मानकर हमारे पूज्य पूर्वज श्री राम ने चौदह वर्ष का बनवास स्वीकार किया। आपके आचरण में भी उनके गुण उतरने चाहिये।

---

१. प्रात काल उठि के रघुनाथा।
मात-पिता गुरु नावहिं माथा॥

यदि आप भाई हैं !

आप कई भाई एक ही माता के उदर से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु आप लोगों में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष एवं स्वार्थ का कितना बड़ा तनाव रहता है। द्वेषाग्नि में सब जलते रहते हैं। कभी-कभी तो परस्पर बोल-चाल भी बन्द हो जाता है। दूसरे से चार बात कर लेंगे, परन्तु अपने भाई से आप नहीं बोलेंगे, सामने पड़ जाने पर सम्भवतः उन्हें आप आँख उठाकर देखें भी नहीं। आप में कितना अज्ञान है, अपनी छाती पर हाथ धरकर, ठण्डे दिल से विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

सम्भवतः आप से तो त्रुटि होती नहीं, आप के अन्य भाइयों के कारण यह बखेड़ा बढ़ा होगा—यह भाव आपके हृदय में उछलता होगा। परन्तु यह बिलकुल भूल है। आप का भी दोष होगा। यदि सचमुच आप का दोष नहीं है, तो उनकी हित-कामना कीजिये और शान्त रहिये।

भाई की उन्नति देखकर भाई जले, भाई को भाई हानि पहुँचावे, भाई के धन को भाई हड़प ले, भाई का सिर भाई कटवा दे, भाई की भाई अहित-कामना करे—यही तो आप के भ्रातृत्व का रूप है। फिर आप कैसे बनमानुष हो रहे हैं। यदि आप में ये भावनायें नहीं हैं, तो आप धन्य हैं।

ध्यान रहे ! भाई-भाई एक दूसरे के तृणभर दोष को पर्वततुल्य देखते हैं, और अपने पर्वततुल्य दोष भी तृण भर नहीं समझते। तब आप में कैसे सुमति-सम्पति तथा सुख होगा।

बड़े भाई ने ऊपर से घी से भरा एक घड़ा नीचे खड़े छोटे भाई को पकड़ाया। और दोनों के हाथ से घड़ा छूट कर गिर पड़ा और घड़ा फूटकर घी खराब हो गया। बड़ा भाई कहता - "भैया ! मैं ठीक से न पकड़ा सका।" छोटा भाई कहता—"बाबू जी ! मैंने पकड़ने में गलती की।" अब बताइये ! कौन झगड़ा करे ? जहाँ पर-दोष दर्शन नहीं है, जहाँ अपने दोष देखे जाते हैं, वहाँ ही सुख हो सकता है।

ध्यान रहे ! आप बड़े भाई हैं, तो 'राम' बनें और मझले हैं तो 'भरत' बने तथा छोटे हैं तो 'लक्ष्मण' बनें। राम, भरत तथा लक्ष्मण में एक के लिये एक का कैसा सुन्दर त्याग और प्यार था। इसी प्रकार भाई भाई में सुन्दर बर्ताव करें। बड़े भाई की गोद में आप बालकवत् लिपट जायँ, उनके चरणों को चूम लें तथा छोटे भाई को प्रिय पुत्रवत् या मित्रवत् हृदय से लगा लें। भाई-भाई गला मिला कर प्यार से रहें। बड़ों के प्रति श्रद्धा तथा छोटों के प्रति प्यार रखें। इस प्रकार भ्रातृत्व का उच्च आदर्श स्थापित करें।

यदि आप पति हैं !

यदि आप पत्नी को कष्ट देते हैं, उसे गाली देते तथा मारते हैं और अपनी धर्मपत्नी का त्याग कर अन्य स्त्री से प्रेम करते हैं, तो निश्चय आप पतित-मूर्ति हैं। पत्नी के दुःख-सुख में आप उसके सहायक नहीं बनते, उसको सद्शिक्षा नहीं देते, उसको पीड़ा ही पहुँचाते रहते हैं। तो आप निश्चय ही कुपथ में हैं। विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! आप को पत्नीव्रती होना चाहिये। अर्थात् अपनी पत्नी से ही उचित सम्बन्ध रखना चाहिये। अपनी पत्नी के अतिरिक्त नारियों को माता, बहन और पुत्री वत् समझना चाहिये। जो स्वतः पत्नीव्रत नहीं रखता, परन्तु अपनी स्त्री को पतिव्रता रखना चाहता है, वह कैसा निर्बुद्धि है। वह स्वयं तो राम नहीं बनना चाहता, परन्तु अपनी पत्नी को सीता के रूप में देखना चाहता है।

ध्यान रहे ! जीवन संयमिक रखना, पत्नी के रजस्वला होने के अनन्तर ऋतुकालिक सम्बन्ध, महीने में केवल एक-दो दिन का ही रखना, अधिक विषयी जीवन शव तुल्य है। एक-दो सन्तान होने के पश्चात् अवश्य दोनों अखण्ड ब्रह्मचारी बन जायें।

ध्यान रहे ! पत्नी का अधिक दुलार, उसकी

प्रत्येक बातों को गुह्‌-मन्त्रवत् सुनते रहना — आप तथा उसके लिये आपत्तिजनक है। जो अपने मनको[१] स्त्री के हाथ में सौंप देता है। उसकी नावका प्रायः डूब जाती है। परन्तु यह भी ध्यान रखो, यदि आप की पत्नी सुशीला, बुद्धिमती एवं गम्भीर है, तो उससे विचार-विनिमय करना अति आवश्यक है। किसी कार्य के करने में यदि योग्य हो, तो पत्नी से सम्मति लो, उसका आदर करो।

ध्यान रहे ! दाल में नमक कम हो गया, साग-चटनी नहीं बनायी गयी, बस लगे पत्नी को अनाप-सनाप कहने। असभ्य लोग तो गाली-मार भी दे देते हैं। यह दानवता है। त्रुटि सबसे होती है। प्रेम से समझाकर उसे ठीक मार्ग पर लाओ। आदर पूर्वक मीठे वचनों से ही दूसरे के हृदय को अपने वश कर सकते हो। अनुचित शासन करोगे, तो उसके हृदय में आप के प्रति रहा-सहा प्रेम भी ईर्ष्या-द्वेष के रूप में परिणत हो जायगा, और वातावरण दूषित हो जायगा। आपका स्वर्गीय घर नर्कीय बन जायगा। जिस गृहस्थ के घर में नारी का आदर नहीं है, वह घर दुःखों से भर जाता है।

---

१ "मूरख दुई बिच तीसर फांदे।
मूरख बात बाम की कांदे॥"

ध्यान रहे ! नारियों को स्वतन्त्र कर देने पर, पर नियन्त्रण न रखने पर उनका बड़ा भारी पतन होता है ।

ध्यान रहे ! नारी को हीन मत समझो । जो चेतन आप हैं, वही वह है । उसको अपेक्षा की दृष्टि से देखना, उसका तिरस्कार करना—मानवता नहीं है । गृहस्थी-मर्यादानुरूप वह आप की जीवन-सङ्गिनी एवं अर्धाङ्गिनी है । अतएव मानव बनकर उसके साथ उत्तम बर्ताव करो । उसमें ममता-आसक्ति न बनाओ, शुद्ध प्रेम रखो । जहाँ आसक्ति-ममता है, वहाँ भोग का लक्ष्य है । जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ सेवा तथा त्याग का लक्ष्य है ।

ध्यान रहे ! भोग-परायण पुरुष पत्नी में ममता-आसक्ति रखता है, और उसके रोगी, बंध्या तथा वृद्धा होने पर उसका तिरस्कार कर देता है । परन्तु जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ पति ऐसी अवस्था में पत्नी की सेवा या रक्षा करता है । शुद्ध प्रेम का लक्षण ही यही है कि दुःखद अवस्था में वह अधिक चमक उठे । दो विवाह तो कभी भूलकर भी नहीं करना चाहिये । यदि भूल में पहले कर लिया है, तो दोनों के साथ एक-सा सुन्दर बर्ताव करो । अन्यथा दोष के भागी बनोगे ।

(५)

यदि आप पत्नी हैं !

आप किसी की तनिक भी नहीं सह सकतीं। क्योंकि आप बहुत बड़े घराने की लड़की हैं। बहुत मिजाजदार आदमी हैं। कोई चलेगा डार-डार, तो आप चलेंगी पात-पात ! आप के पति घर में पैर रखते ही आप से डर जाते हैं। सास-ससुर तक आप से कड़ी बात नहीं कर सकते। जब से आप ससुराल में पधारी हैं ससुराल वाले आप से पनाह मान लिये हैं। आप की पूरे घर पर ही नहीं बल्कि टोले-मोहल्ले वालों पर भी धाक जम गयी है। आपको लोग यम-दूत से भी अधिक डरते हैं। मजाल है कोई आपके सामने 'चूँ' करदे। किसी के 'चीं-पूँ' करने पर आप उसे दश बात धमक बैठती हैं। ऐसा करने में आप को बहुत बड़ा स्वाभिमान है। परन्तु आप ठण्डे दिल से विचारें—आप किधर जा रही हैं ?

आपने जबसे ससुरालमें पैर रखा, सासु जी को तो घीकी मक्खी समझ लीं, फिर ननद किस खेतकी मूली है। उससे तो रात-दिन घर का काम-काज करवाते रहने में ही आपकी प्रसन्नता है। ससुरजी भी ठहरे

बुड्ढे "साठी बुद्धिनाठी" होती ही है। पतिदेव जवान तो हैं परन्तु आप के विचार से वे तो निपट 'भोंदू' हैं। क्योंकि वे बुड्ढे माता-पिता के पीछे मरते रहते हैं। देवर-भतीजों की तो आपकी दृष्टि में गिनती ही नहीं है। सबसे लम्बी-चौड़ी बुद्धि तो केवल आपकी है। यह बुद्धि का प्रमाद आप को कहाँ ले जायगा? आप स्वयं गम्भीरता से विचारें,—आप किधर जा रहीं हैं।

नैहर में माता-पिता की बहुत दुलारी होने के कारण आप बहुत स्वाद-शौकीनी हैं, बहु खर्चीली हैं। आपके लिये बहुत-से आभूषण चाहिये। अनेक प्रकार के नये ढंग के कपड़े चाहिये। दश-पाँच जोड़े जूते-चप्पल चाहिये। नाना प्रकारके पाउडर-लवेण्डर तथा शृङ्गार की अपार वस्तुयें चाहिये। आप की किसी वस्तु से तृप्ति नहीं होती। पति को तथा सास-ससुर को चाहे कितनी ही आर्थिक आपत्ति हो, परन्तु आप के स्वाद-शौक में कमी नहीं होनी चाहिये। आप विचारें! कहाँ पातिव्रतधर्म और कहाँ आप का विकट स्वभाव!

आप तो ठहरीं सुकुमारी, काम-काज कभी की ही नहीं। बर्तन माजना-चौका लगाना, चावल कूटना, आटा पीसना ये तो आप से हो ही कैसे सकते हैं? आप तो रसोई भी नहीं बना सकतीं। दो दिन यहीं आपको रसोई घर में जाना हुआ, तो आप

बीमार पड़ जाती हैं। बूढ़ी सासु और ननद—दो टह-लुई आपको मिली ही हैं। पतिदेव की सेवा करना तो दूर रहा, यदि वे प्रातःकाल चाय बनाकर चारपाई पर आप को दे देवें, तो आप को बड़ा ही आनन्द हो। परन्तु आप विचारें! आप किधर जा रहीं हैं ?

ध्यान रहे! दश दिन के पश्चात् आप भी किसी बहू की सासु हो सकती हैं। अपने सासु की सेवा न करेंगी तो अपने बहू से सेवा प्राप्त करने की आप क्या अधिकारिणी होंगी? आप सरल, सुशीला बनें, मधुर-भाषण करके घर-पड़ोस वालों के सामने अमृत वर्षाती रहें। परिश्रमी, सेवा परायण, निर्मानी तथा निर्लोभी बनें। आपका आचरण ऐसा होना चाहिये कि आप के सास-ससुर देवर-ननद, देवरान-जेठान तथा पति-परिवार सब प्रसन्न रहें।

आप कम-खर्चीला, सादगी-प्रिय, दुर्व्यसन-हीन, सहन-शील, क्षमाशील तथा देवी बने। पतिपरायणा बनें। पति के अतिरिक्त पुरुषों पर सदैव पिता पुत्र-भ्राता का भाव रखें। सत्संग-प्रेमिनी, सद्ग्रन्थ-सद्-विचार-अनुरागिनी बनकर जीवन सुधारें।*

---
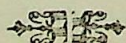
* इसके लिये 'स्त्री बाल-शिक्षा' का अध्ययन करके नारी के कर्तव्य का ज्ञान करना चाहिये।

(६)

यदि आप सास हैं !

बहू जब से घर में आयी, आप उससे झगड़ती ही रहती हैं। उसके माता-पिता का नाम लेकर भी गालियाँ दे देती हैं। आप बड़ी शानदार आदमी हैं। जब पहिले आप अपने सास-ससुर की तथा पति की नहीं सहीं, फिर आज बहूकी क्यों सहेंगी। बहू बेचारी आप को कुछ सताती भी नहीं, तो भी उसके हर काम-काज में नुक्ताचीनी करते रहना आप की ठेकेदारी है। उसे भी आप अपने समान एक जानदार महिला समझें —यह आपके स्वाभिमानके प्रतिकूल है। बहू बेचारी को आपजातेतर की चूहिया बना दी हैं। उसे कितना ही कष्ट हो, वह 'चीपूं' नहीं कर सकती। सोचिये ! आप किधर जा रही हैं ?

आप की बेटी, बहू को सदा दोष लगाया करती हैं। आपअपनी बेटी के सामने बहू को कुछ भी नहीं समझती। बहू बीमारहो, उसे मानसिक कष्ट हो, परन्तु आपको इससे कोई आवश्यकता नहीं। आप विचारें ! आपका कुटुम्ब कैसे सुखी रहेगा ?

ध्यान रहे ! आप बहू-बेटी, दोनों को समान समझें। दोनों का एक समान प्यार रखें। बहू से कोई त्रुटि हो जाय, तो उसे बच्ची समझ कर आप क्षमा करें। त्रुटि तो बड़े-बूढ़ों से भी हो जाती है। फिर गाली-झगड़ा तो महान अज्ञान का कार्य है। कहा गया है—

दोहा—"झगड़ा नित्य बराइये, झगड़ा बुरी बलाय।
दुख उपजै चिन्ता दहै, झगड़ामें घर जाय॥'

यदि आप ससुर हैं।

आज के कितने ससुर बहू पर कुदृष्टि करते हैं। वे पापी यह नहीं समझते, कि हम नरक में पैर रख रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी ने बलि का उत्तर देते हुए कहा—

अनुजबधू, भगनी, सुत-नारी।
कन्या, सुन शठ! ये सम चारी॥

अर्थात्:—छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्र की स्त्री (बहू) तथा पुत्री—हे मूर्ख! सुन! ये चारों समान हैं।

अतएव जो अनुजबधू या पुत्रबधू पर कुदृष्टि करता है। वह मानो अपनी बहन या पुत्री के ऊपर कुदृष्टि करता है। वह महान हत्यारा और पापात्मा है। वह समाज से बहिष्कृत करने योग्य है।

आप बहू को सदैव पुत्रीवत् समझें। उसकी ओर दृष्टि न करें। उससे सेवा न लें। केवल दूर से जल-भोजन ले लें। सच्चरित्रता ही जीवन का भव्य प्रकाश है।

उपर्युक्त प्रकार से देवर को चाहिये कि भावज को माता तुल्य समझे और जेष्ठ को चाहिये कि अनुज-बधू को पुत्रीवत् माने।

यदि आप गृहस्थ हैं !

यदि आप चोरी करते हैं, डाका डालते, बेईमानी ठगाई तथा घूसखोरी करते हैं। धाँधलेबाजी, धूर्तता करके तथा लूट-खसोट कर अपना घर भरते हैं। पर-पीड़न, अन्याय, जबंदस्ती एवं छल में पचते रहते हैं। परायी स्त्री पर कुदृष्टि करते, हिंसा मांस-मद्यादि भक्षण करते हैं। गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू आदि नशीली आदतों में चूर रहते हैं। लड़ाई-झगड़ा मार-काट आदि उत्पात में मस्त रहते हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप की सारी कमाई का फल, अपना तथा अपने कुटुम्ब का पेट पालना या भोग-विलासमें मस्त रहना है। जन-कल्याण परोपकार, दीन-दुखियों की सहायता, सन्त-सेवा, दान धर्म इत्यादि की ओर आप का मन नहीं जाता। यदि आप अतिथि का तिरस्कार करते हैं। वेश्या-भड़ुवे तथा ठग-बदमाशों को पालते हैं। सत्कर्म; दान करने में कंजूस हैं। भोग-विलास में धन खर्च करने में उदार हैं। प्रपंचवार्ता, प्रपंचक्रिया में हरक्षण लीन रहते हैं। परन्तु भजन-

सत्संग, सद्ग्रन्थ-अवलोकन, सद्विचार, मनोनिग्रह, आत्मसंयम करने में आलसी हैं। अनर्थ और स्वार्थ में लीन रहते हैं, परन्तु परमार्थ की तनिक सुधि नहीं लेते, तो सोचिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! आपगृहस्थ हैं, अतः आप को चाहिये न्याय, ईमानदारी और परिश्रम से जीविकोपार्जन करें। अपना और कुटुम्ब का जीवन सादगीपूर्ण रखें। निर्वाह के अतिरिक्त सारे धन को परोपकार में लगावें। इतना न हो सके, तो कमाई का दशवाँ अंश लगावें। दशवाँ न हो सके, तो सोरहवाँ अंश लगावें। यदि कोई अत्यन्त दीन हो और उससे सोरहवाँ अंश भी न हो सके, तो यथासक्ति अपने धन को तथा मन बचन को भी परोपकार में लगावे। अतिथि-सत्कार करे। सब प्रकार हिंसा-व्यभिचार, चोरी अभक्ष्य-भोजन, नशीली वस्तुओं का त्याग करे, तथा समय का सदुपयोग करके भजन-सत्संग एवं सद्ग्रन्थ-अध्ययन में मन लगावे और अपना उद्धार करे।

यदि आप छात्र या छात्रा हैं !

यदि आपने माता-पिता का डर तथा श्रद्धा खो दी है। यदि आप के लिये नाना प्रकार के वस्त्रअलङ्कार चाहिये। दिनमें चार-छः बार फैशनीय कपड़ेअलङ्कार बदलने चाहिये। नाना प्रकार के तेल तथा दर्पण-कंघी हरक्षण पास में होने चाहिये। रोज-रोज सिनेमा, होटल, चाय-चाट तथा मित्रों के स्वागत के लिये पैसे चाहिये। यदि आप को राजा रानी बनकर रोज-रोज शहर-बाजार-टहलने, क्लब-क्रीड़ा करने चाहिये। माता-पिता तथा घरवाले चाहे अपने पेट-काटकर आपको पैसे देते हों, इससे यदि आपको प्रयोजन नहीं है, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

चाम, बाल और वस्त्र—इन्हीं के सवाँरने में तो दिन का दिन चला जाता है। निरन्तरं अध्ययन तो विषय का होता है। पुस्तकों की केवल पढ़ाई रह गई है। आप तितले तथा तितिलियाँ (फैशनेब्ल) बनकर विलास के अन्धकारपूर्ण आकाश में उड़ने चाहते हैं। शील, सभ्यता, गुरु श्रद्धा, सौम्यता एवं गम्भीरता से तो आप को कोई आवश्यकता नहीं। चंचलता, उद-

ण्डता, उछृङ्खलता एवं चटपटे निःशील-तीखे वचन— बस यही तो आपकी सभ्यता ठहरी। क्योंकि आप प्रगति कर रहे हैं। सोचें ! आप किधर जा रहे हैं ?

आप माता-पिता तथा बड़े-बूढ़ों के चरण छूने में लज्जित होते हैं। चार मित्रों के सामने आप पिता को पिता भी कहने में संकोच करते हैं। क्योंकि पिछड़े हुए पुराने असभ्य को आप अपना पिता कैसे कहें। आपने अंग्रजी पढ़ी, अंग्रेजी वेष-भूषा से रहते हैं। आपने बहुतसी घास-फूसों तथा मेढक, चमगादड़ तथा केचुओं का अध्ययन किया है। आप बहुत बड़े विद्वान हैं। आप को यह ज्ञान (सच पूछिये तो अज्ञान) हो गया है कि हम (मनुष्य) बन्दरों की सन्तान हैं। हमारा सबसे पूर्वज प्राणी अमीबा नामक एक कोषीय जन्तु (कीड़ा) है।

धन्य रे विद्या ! यह आज की विद्या, विद्या नहीं अविद्या है ! आज की विद्या मनुष्य को क्लर्क बना सकती है, 'सत्य-मानव' नहीं फिर भी इस विद्या का आप को इतना अभिमान है कि आप के सामने अन्य सब मूर्ख हैं। सोचिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! आज की दूषित शिक्षा-प्रणाली, सह-शिक्षा, छात्रावासके गन्दे वातावरण से आपका कितना नैतिक पतन हुआ है, क्या आप इस पर कभी विचार

करते हैं ? ब्रह्मचर्य का वास्तविक स्वरूप तो प्रायः स्वप्नसा हो गया है। जहाँ रात-दिन स्थूल देह का साज-श्रृङ्गार होता है, वहाँ ब्रह्मचर्य को कौन पूछता है। मन रोकना तो सम्भवतः आप पाप भी समझते हों।

ध्यान रहे! आप लोगों को माता-पिता, बड़े-बूढ़ों एवं गुरुजनों का डर मानना चाहिये। सादगीपन, सदाचार, ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। कम खर्चीला बनना चाहिये। सिनेमादि नहीं देखने चाहिये। लड़कियों से लड़कों को तथा लड़कों से लड़कियों को सर्वथा दूर रहना चाहिये। दो लड़के एक आसन पर सोना, तथा अन्य लड़कों से अनावश्यक अपना अंग स्पर्श करवाना या अन्य लड़के का अंग स्पर्श करना, सर्वथा त्याग देना चाहिये। पूर्ण मनोयोग से विद्या अध्ययन करना चाहिए। साथ-साथ समय निकाल कर सद्ग्रन्थ भी पढ़ते रहना चाहिये। वैराग्यवान् सदाचरण सम्पन्न सन्तों का सत्संग करना चाहिये तथा अपने को शिष्ट एवं सौम्य बनाना चाहिये।

यदि आप अध्यापक हैं ?

आपने सादगी से नमस्कार कर लिया है। आज के युग में आपको वेतन अच्छा मिलने लगा है। अतः विलास के उपकरण संग्रह करने में आप को सरलता है। यदि आप अध्यापक होकर भी आज पान-तम्बाकू न खायँ, तथा बीड़ी-सिगरेट न पीयें, तब कब इसे खायें-पीयेंगे। आप की नकल करके लड़के बिगड़ेंगे —इसका प्रयोजन आप को नहीं है। यदि आप के जीवन से सदाचार-शिष्टता एवं गम्भीरता उठती जा रही है। यदि आप बिगड़ी घड़ी बनकर लड़कों को बिगाड़ने के कारण हो रहे हैं, तो सोचिये आप किधर जा रहे हैं ?

क्या आप मनोयोग, तत्परता एवं सत्यता पूर्वक बच्चों को पढ़ाते हैं, दिन तो नहीं काटते ? घास-फूस तथा केचुआ मेढक के अतिरिक्त क्या छात्र-छात्राओं को उनके व्यवहार-परमार्थ एवं अभ्युत्थान की भी बातें बताते हैं क्या आप सदाचार की शिक्षा देते हैं। क्या बच्चों पर शासन करने तथा उन्हें मारने से ही वे ठीक रहेंगे और ठीक से पढ़ेंगे—यह धारणा तो

आपकी नहीं है ? यदि नहीं, तो ठीक है और यदि हाँ ! तो सोचिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! अपनी योग्यता और प्रेम-समता के बल पर छात्रों पर अधिकार प्राप्त करना चाहिये। अध्यापक को चाहिये कि वह मितव्ययी सादगीपूर्ण एवं सच्चरित्र हो। बीड़ी सिगरेट, पान-तम्बाकू आदि किसी प्रकार का दुर्व्यसन सेवी न हो। स्वयं सदाचार से चलें और छात्रों को सदाचार की शिक्षा दें। छात्र-छात्राओं पर कुत्सित-भावना कभी न करें।

यदि आप पदाधिकारी हैं !

'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं ?'
'प्रभुता बधिर कौन नहिं केही ?'

आप पदाधिकारी हैं। सिपाही, थानेदार, तहसीलदार, डिप्टी-कलक्टर या कमिश्नर हैं। फिर आप किसी की क्यों सुनने लगे! आप अपने दुःख-सुख के समान दूसरे के दुःख-सुख नहीं समझते। घूस लेने में आप को कोई हिचक नहीं है। घूस लेने में आपको निर्भरता-सी हो गयी है। चाहे अमीर से ले या गरीब से, वह सब भार अन्त में श्रमिकों पर या सामान्य जनता पर ही तो पड़ता है। परन्तु दरिद्रों-श्रमिकों या जनता जनार्दन की रोटी छीनने में आपको कोई संकोच नहीं है। विचार करें! आप किधर जा रहे हैं?

ध्यान रहे! चोरी-डकैती, हत्या, घूसखोरी आदि अन्याय का दमन करने के लिये सरकार पुलिस संस्था की स्थापना की है। परन्तु अधिक-से-अधिक यह सब अन्याय पुलिस से ही हो रहा है या उसकी शिथिलता से हो रहा है। घूस लेने में पुलिस की श्रेणी सबसे ऊँची है। न्यायालय में न्यायाधीश न्याय करने बैठता

है । परन्तु उसके पास ही पेशकार पीछे से घूस लेता है । क्या यह न्यायाधीश नहीं जानता ? रामकहो ! भागीदार भी रहता है । फिर न्याय कौन करेगा ? चोरी, डकैती, हत्या लोग करते रहते हैं और पदाधिकारियों की जेब-पूजा करके छूटते रहते हैं । जब बाड़ ही खेत खाता हैं, तब रक्षा कौन करे ? आजकल की अत्यन्त घूसखोरी मुर्दार-शासन होने का द्योतक है ।

ध्यान रहे ! जनता की सेवा के लिये विकास-फंड में सरकार जितना धन देती है । उसका कुछ भाग ऊंचे से नीचे तक के पदाधिकारियों के जेबों में समा जाता है । उनके जेबों में समाने से जो बचा, उसका अधूरे रूप में जनता की सेवा में लगाने का नाट्य किया जाता है । लेखपाल, पुलिस, वन-रक्षक आदि नौकरसाही तो मानो सरकार की ओर से घूस लेने के लिये ही उतरे हैं ।

ध्यान रहे ! आज कल लोगों को स्वाद-शौकीनी, फैशन विलास एवं मान-बड़ाई की बड़ी लालसा हो गयी है । यही मुख्य कारण है कि अपनी सत्य की कमायी में निर्वाह नहीं हो रहा है । तृष्णालु, लोभी तथा विलासी मनुष्य बिना अन्याय किये पर्याप्त धन न पायेगा न उसका विलास चलेगा । विलास का फल यद्यपि विनाश है । तथापि आज के उन्मत्त मानव को समझाये कौन ?

ध्यान रहे ! लोग अपनी श्रेणीका पुरुषार्थ ठीक से नहीं करते। परन्तु फल अधिक-से-अधिक मिले—यह सबकी कामना है। जब तक अकर्मण्यता का अन्त तथा भोग-विलास की कमी नहीं होगी, तब तक समाज में सुख-शांति होने का कोई साधन नहीं है।

ध्यान रहे ! यह आप के पद-अधिकार निरन्तर नहीं रहेंगे। इससे चाहे सुयश कमा लें चाहे अयश, चाहे पाप कमा लें चाहे पुण्य, आपके हाथ की बात है।

ध्यान रहे ! आप का कर्तव्य है—हर निवेदकों से विनम्रता पूर्वक मिलें। उनका निवेदन सुनें। उनके हित करने का यथाशक्ति प्रयत्न करें। किसी को दीन जानकर, उसकी अवहेलना, तिरस्कार न करें। किसी से एक पैसा भी घूस न लें। अन्यथा लोक-परलोक में उसका बदला पटाना पड़ेगा। अपने न्यायोपार्जित द्रव्य से सादगी पूर्वक जीवन-निर्वाह करें। मितव्ययी रहें।
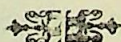
यदि आप देश-सेवक हैं !

आप पंच-प्रधान-सरपंच तथा एम० एल० ए०, मिनिस्टर एवं प्रान्तपति हैं। अथवा आप किसी राजनीतिक पार्टी की ओर से देश-सेवक का टिकट पाये हैं। ठीक है। परन्तु आप विचार कीजिये ! आपके हृदय में अधिक पदलोलुप्ता है कि कर्तव्यपालन का उत्साह भी आप जनता-जनार्दन की सेवा का नारा लगा करके उनका गला तो नहीं काटते हैं। चुनाव के समय में वोट के लिये तो आप एक-एक वोटर का चरण चूम लेते हैं। परन्तु कुर्सी मिल जाने पर, उन्हीं वोट देने वालों को आप नेत्र भर देखते भी नहीं होंगे। पीछे से यदि आपसे कोई मिलना चाहे, तो सम्भवतः आपको किसी से मिलने, बात करने की छुट्टी भी नहीं होगी। क्या आप में ये सब आचरण है ? याद है, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं !

किसी गृहस्थ के बच्चे को यदि नौकरी की जगह के लिये आप थोड़ा प्रयत्न करते होंगे, तो भी आप के चरणों में दो-चार सौ मुद्रायें चढ़ने ही चाहिये। यदि बिना घूस लिये आप किसी का कुछ नहीं करते, तो सोचिये आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! बैठकर दही-तरकारी खाने के लिये आप को कुर्सी मिली है—यदि ऐसी आप की धारणा है, तो निश्चय ही आप विपरीत पथ में हैं। अतएव पद-लोलुप्ता का त्याग करके कर्तव्य-परायण बनिये। सादगी जीवन व्यतीत कीजिये। सद्आचरणों में ठोस बनिये। यदि जीवन भोग-विलासमय होगा, तो आप से वह पाप करा ही लेगा।

ध्यान रहे। कहीं जनता का अधिकार छिन न जाय। आप के द्वारा किसी का अहित न हो जाय—इसका सदैव लक्ष्य रखिये। छोटे-बड़े सभी से उदारता पूर्वक मिलिये। सबका कुशल पूछिये। सबको सेवा कीजिये। जैसे 'देश-सेवक' का पद लिये हैं, तैसे उसे चरितार्थ कीजिये। 'देश-सेवक' का उच्च आदर्श स्थापित कीजिये। अगले चुनाव से तो आपको डरना ही चाहिये। यदि आप में मानवता न रहेगी, तो अगला चुनाव आपके विरुद्ध होगा ही। सच्चाई तो यह है कि भविष्य में आप की सीट भले छिन जाय। परन्तु आप जनता की सेवा में सत्यता पूर्वक कर्तव्यनिष्ठ बनें।
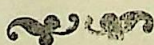
(१३)
यदि आप वैश्य हैं !

यदि आप तौल-माप में कम देते और अधिक ले लेते हैं। डाड़ी-पसंगा मारते, घी में तेल या डाल्डा मिलाते; चने में कंकड़, आटा में मिट्टी एवं बढ़िया माल में घटिया माल मिलाकर एवं धाधलेबाजी, बेईमानी, ठगाई करके जनता का द्रव्य बटोरते हैं, तो बिचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! जनता का सोना, चांदी चुराना, दाँव पाकर उचित से अधिक व्याज लेना, उचित से अधिक मुनाफा लेना, किसी की थाती-धीरौं रख कर कालान्तर में 'हम तो नहीं जानते' कहकर हड़प लेना—यदि यह सब दोष आप में हैं, तो निश्चय ही आप अपना वर्तमान तथा भविष्य बिगाड़ रहे हैं।

ध्यान रहे ! किये हुए कर्मों के फल बिना भोगे मिट नहीं सकते। अन्यायोपार्जित द्रव्य का बदला पटाना पड़ेगा। थोड़ा दान करके सब पापों का निवारण भी नहीं कर सकते हैं। चाहे दान बहुत कम करें, परन्तु अन्याय पाप न करें आप के कमाये हुए द्रव्य

का उपभोग तो सब परिवार करेंगे परन्तु फल केवल आप को ही भोगना पड़ेगा।

ध्यान रहे! मुखसे खाये हुए समस्त भोजनों का संग्रह पेटतो करता है, परन्तु केवल अपने स्वार्थके लिये नहीं। वह समस्त भोजनों को पचाकर, उसका रस सारे शरीर में पहुँचा देता है और उसी में उसका भी पोषण हो जाता है। इसी प्रकार आपका संग्रहीत धन पूरे समाज के लिये होना चाहिये। उसी में उचित मुनाफा से केवल अपने कुटुम्ब तथा अपना पोषण भी करते रहें।

ध्यान रहे! संग्रहीत धन चाहे धर्म-परोपकार तथा दीन-दुखियों की सेवामें लगाओ, चाहे मधुमक्खी वत् केवल उसकी रक्षा करते-करते मर जाओ। धर्म में लगानेसे आपका लोक-परलोक बनेगा। यहाँ सुयश तथा पुनर्जन्म में पुनः वैभव की प्राप्ति होगी। और संग्रह करके मर जाने से, कुटुम्बी या ऐरे-गैरे लूट-लूट कर खालेंगे, और उस (धन) का लोभ तुम्हें नरक में भटकायेगा।

अतएव न्यायपूर्वक द्रव्य उपार्जित करो और उसका सदुपयोग करके लोक-परलोक बनाओ।

यदि आप क्षत्रिय हैं !

यदि आप दीन-दुखियों को सताते हैं। उनकी बहूबेटियों पर कुदृष्टि करते या उनको हड़प लेते हैं। निर्बलों के खेत, धन, फसल या किसी भी सम्पत्ति पर अनुचित रूप से आप अपना अधिकार जमा लेते हैं। तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप अण्डा-माँस-मछली खाते, शराब-ताड़ी पीते, उनमत्त जैसा बर्ताव करते, सबसे ऐंठ कर चलते हैं। तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे !जो 'छत' अर्थात् चोट से 'त्राण' अर्थात् रक्षा करे, वह क्षत्रिय है। शरीर पर कोई चोट पहुँचावे, तो हाथ रक्षा के लिये उठता है। पहले हाथ टूट जाय, पीछे शरीर पर चोट लगे। यही क्षत्रिय का गुण है। जब तक अपना जीवन रहे, तब तक समाज की रक्षा करे।

ध्यान रहे ! पुत्रके समान समाज की रक्षा करना, दान देना, अन्याय को रोकना, प्रभावशाली होना, धैर्यवान् होना, कष्ट से डरकर समाज-रक्षा का कार्य न छोड़ना, व्यवहार-कुशल होना—यह सब आप के पुनीतगुण हैं।

ध्यान रहे। निर्बलों की रक्षा करने के विपरीत जो आज-कल उनका भक्षण करना बहुत क्षत्रियों का स्वभाव हो गया है। यह बड़ा ही शोचनीय विषय है अतएव विपरीत-पथ त्यागकर, सीधा मार्ग पकड़ना चाहिये।

यदि आप ब्राह्मण हैं !

संध्या-गायत्री तो आप जानते ही नहीं कि किस चिड़िया का नाम है। सम्भवतः आप नित्य स्नान भी न करते हों। तम्बाकू ऐसी गन्दी वस्तु भी आप खाते हैं। बीड़ी, सिगरेट, सुपारी आदि न जाने आप क्या-क्या सेवन करने लगते हैं और यदि आप मांस-मछली तथा शराब-ताड़ी भी खातें-पीते हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

'दिज चिन्ह जनेऊ' इस गोस्वामी जी की उक्ति-अनुसार यदि आप के ब्राह्मणत्व का चिन्ह केवल यज्ञोपवीत रह गया है, ब्राह्मणों के गुण आप के पास नहीं फटकते। तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं।

ध्यान रहे ! श्रीकृष्णजी गीता में ब्राह्मणों के ये आचरण होने बतलाये हैं 'बुराइयों से मन को रोकना, इन्द्रियों पर दमन करना, धर्म-रक्षा के लिये कष्ट सहनरूप तप करना, अन्तर-बाहर की शुद्धि रखना, क्षमा करना, सरलता रखना, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना, आत्म-ज्ञान में स्थित होना, पुनर्जन्म-कर्मफल-

भोग में विश्वास रूप आस्तिक-भाव होना—यह ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं।

अतएव अपने बनाये कुटेवों का परित्याग करके उपर्युक्त सद्गुणों को धारण करें।

ध्यान रहे! उपर्युक्त सद्गुण न धारण करके नाम मात्र ब्राह्मणत्वका अभिमान कुछ काम न करेगा। कलक्टर का लड़का कलक्टर नहीं होता। कलक्टरी की योग्यता प्राप्त होने पर ही कोई कलक्टर हो सकता है। इसी प्रकार केवल ब्राह्मण नामधारी घराने में जन्म लेकर ही आप पूरे ब्राह्मण नहीं हो सकते, जब तक उपर्युक्त सद्गुण न धारण करें।

यदि आप सन्तों का नमस्कार इसलिये नहीं करते कि वे न जाने किस जाति के हैं। अथवा वे निम्न वर्ण के हैं। यदि आप विनम्रता पूर्वक सत्संग, भक्ति, सन्त-सेवा करने में अपना अपमान समझते हैं। अपने से दूसरेको नीचा समझते हैं, तो विचारिये आप किधर जा रहे हैं ? यह आपके जाति-पाँतिका अभिमान उसी प्रकार सार हीन है, जैसे कागज के फूलों में सुगन्धी नहीं होती।

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कहते हैं—

नीच नीच सब तरि गये, सन्त चरन लवलीन।
जातिहि के अभिमान से, बूड़े बहुत कुलीन॥

तुलसी भगत शपच भलो, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—

बड़े गये बड़ापने, रोम-रोम हंकार।
सतगुरु के परिचय बिना, चारों वरण चमार ॥
कारे बड़े कुल उपजे, जो रे बड़ी बुधि नाहिं।
जैसे फूल उजारि का, मिथ्या लगि झरि जाहिं ।

यदि आप अपने को शूद्र मानते हैं !

आप मत समझिये कि हम सबसे नीच हैं, और हम उच्च-कार्य, कल्याण-कार्य नहीं कर सकते हैं। अन्य के समान आप भी मानव हैं। अन्य के समान आपके शरीर में भी सभी तत्त्व हैं। दूसरे के समान आप भी अविनाशी चैतन्य हैं। आप भी मानव तन पाये हैं। दूसरे उन्नत व्यक्ति के समान ही अपनी उन्नति कर सकते हैं।

ध्यान रहे ! "आप का छूवा जल-भोजन जब दूसरे जाति वाले खा-पी लेंगे। तब आपकी उन्नति हो जायगी।" इस भ्रम को सर्वथा छोड़ दीजिये। अपना छूवा दूसरे को खिलाने-पीलानेकी इच्छा ही न रखिये। दूसरा आपको छू देगा, तब आप उच्च होंगे, यह भ्रम क्यों ? आप अपने मे ही पूर्ण हैं। आप उच्च आचरण धारण कीजिये। नम्रता, पवित्रता, क्षमा, दया, सेवा, सत्संग, भक्ति इत्यादि। इसी से आपकी उन्नति है।

ध्यान रहे ! अपने को नीच मानने से जैसे आत्मा कुचल जाती है। उससे भी बड़ा पतन तब होता है, जब अभिमान आता है। अतएव किसी प्रकार का

अभिमान छू न जाय। पहले जो ब्राह्मण-वर्ण आदर्श रूप था, अभिमान के कारण ही उसका आज पतन हो गया। अतएव आप में अभिमान भी नहीं आना चाहिये।

ध्यान रहे। नम्रता, भक्ति, सत्संग तथा उच्च गुण धारण करने से ही मनुष्य उच्च होता है। जाति-पांतिसे कोई उच्च नहीं होता। सबरी, नाभाजी, रैदास नरसी आदि कितने उच्च आदर्श के हो गये।

अतएव विद्या-शिक्षा, नम्रता, सत्संग, भक्ति,सेवा तथा समस्त आदर्श गुणों को अपना कर उच्च बनो।

यदि आप स्वामी हैं !

आप कुछ नौकरों, कर्मचारियों तथा दासों के ऊपर स्वामी हैं। परन्तु यदि नौकरों तथा अपने से छोटे कर्मचारियोंपर आप सदैव व्यंग कसते रहते हैं। उन्हें नीची दृष्टि से देखते हैं। उनसे घृणा करते हैं। उचित वेतन नहीं देते। उनकी मर्यादा तथा अधिकार-रक्षा; और उनकी सुख-सुविधा पर आप तनिक भी ध्यान नहीं देते। यदि उनको आप पशु के समान ही समझते हैं तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! अपने से छोटे कर्मचारियों के ऊपर रोब जमाने तथा शान बघारने के समय, उसे विचारना चाहिये कि उसके भी ऊपर का अधिकारी जब उसके ऊपर रोब जमाता है, और वह जैसे उसे अच्छा नहीं लगता। इसी प्रकार उसका रोब जमाना उसके छोटों को कब अच्छा लग सकता है।

ध्यान रहे ! जो नौकर है, उस पर शान बघारने का अपना कोई अधिकार ही नहीं है। अपने पेट के सभी नौकर हैं। वह भी अपने पेट के लिये, आप के यहाँ नौकर है। आपका कर्तव्य है, उसके साथ भाई चारे का बर्ताव करें। स्वामीपने के नशे में पड़कर नौकर की व्यक्तिगत मर्यादा को ठुकराना तथा उसके हृदय को ठेस पहुंचाना महान अपराध है।

ध्यान रहे ! नौकर के साथ प्रेम का बर्ताव करने पर, उससे अधिक काम लिया जा सकता है। किसी के शरीर पर अधिकार जमाना वास्तविक अधिकार नहीं, बल्कि उसके हृदय पर अधिकार प्राप्त करना ही; वास्तविक अधिकार है। हाँ ! नौकर से मर्यादा-विरुद्ध प्रेम या अभेद बर्ताव करनेसे वह शिर पर चढ़ बैठेगा। अतः मध्य बर्ताव योग्य है।

ध्यान रहे ! समय-योग्यतानुसार आदर करके, प्रेम करके, प्रिय बोलकर, पुरस्कार देकर, भोजन, मिठाई या वस्त्रादि तथा उचित वेतन देकर नौकर एवं सेवक को प्रसन्न रखना चाहिये। एक महापुरुष का कहना है कि 'यदि कभी सेवक (नौकर) बहरा हो जाय, तो स्वामी अन्धा हो जाय।' तात्पर्य यह कि कभी नौकर बात न सुने, तो स्वामी भी अपनी आँख मूँद ले ! छोटी सी त्रुटि पर नौकर पर शासन और दण्ड करना ठीक नहीं। स्वयं हजार लाख रुपये घूस में ले लेना तथा व्यापार में बेईमानी कर लेना और नौकर यदि साग खरीदने में चार आने चुरा लिया, तो उसे पुलिस के हवाले करना या स्वयं अनुचित दण्ड देना ठीक नहीं। स्वयं गल्ती न करे और दूसरे की गल्ती योग्यतानुसार क्षमा करे।

यदि आप सेवक (नौकर) हैं !

यदि आप में अहम है। यदि आप स्वामी को तृण के समान समझते हैं। उनके पीठ-पीछे उनकी निन्दा करते हैं। उनकी अवज्ञा कर देते हैं। बात लड़ाते हैं। तू-तू, मैं-मैं करते हैं। स्वामी के कम आय होने पर भी अधिकाधिक वेतन के लिये सदैव लड़ते रहते हैं। वेतन तो लम्बी चाहते हैं, परन्तु काम वैसा नहीं करना चाहते; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! स्वामी का एक पैसा भी चुराना, स्वामी के साथ विश्वासघात करना है। विश्वासघाती सेवक के लोक-परलोक दोनों नष्ट होते हैं।

ध्यान रहे ! सेवक (नौकर) का कर्तव्य है वह स्वामी से बात न लड़ावे। उचित आज्ञा का उलंघन न करे। स्वामी का अपमान न करे। सदैव स्वामी के प्रति आदर रखे और आदर सूचक शब्द बोले। कभी स्वामी द्वारा डाट-फटकार भी पाकर क्रोध न करे। बारबार स्वामियों का बदलाव न करे। मीठे, वचन, आदर तथा सेवा से स्वामी को अनुकूल बनाने की चेष्टा करे। यदि स्वामी अपने कुटेव-वश अनुकूल न हो सके, तो भी न्याय पूर्वक अपने सेवकपने का आचरण पालन कर, अपना कर्तव्य बरते।

(१६)

यदि आप वकील हैं !

यदि आप रात-दिन धूल की ही रस्सी बटते रहते हैं। यदि आप को रुपये मिल जायँ, तो झूठे मुकदमें तैयार करते रहें। यदि आप रुपये के लोभ से कानूनी षड्यन्त्र रच-रचकर चोरी-डाका-हत्या करवाते रहते हैं, तो विचार कीजिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! झूठे मुकदमे बनाने, निरपराध को फंसाने, चोरी-डाका-इत्यादि करवाने का गम्भीर परिणाम आपको लोक-परलोक में भुगतना पड़ेगा। इसे कल्पना मत मानिये। यह मखौल में उड़ाने की बात नहीं है।

ध्यान रहे ! सम्हल के चलिएगा। यह आज की आप की सफेदपोशी, यह आपके भोग-विलास, तड़क-भड़क, स्ववशता; अधिकार नित्य न रहेंगे। पाप कर्मों के फल भोगने के लिए तो सबको कूकर-शूकर, पशु-पक्षी, अन्धा-लूला-लङ्गड़ा एवं दरिद्र बनना पड़ता है। इससे किसी साहब के लिये छुट्टी नहीं है। कर्म-फल में देर भले हो, परन्तु अन्धेर नहीं है।

ध्यान रहे ! आप के कानूनों का यह षड्यन्त्र यहाँके न्यायालय में ही चल सकता है । कर्म-रहस्य के न्यायालय में किसी का नहीं चल सकता कर्मों के फल तो ज्यों के त्यों ही भोगने पड़ेंगे ।

ध्यान रहे ! निरपराध मनुष्य को फँसाने का मुकदमा,चोरी-डाका-हत्या करवाने का मुकद्दमा, दूसरे के अधिकार को अनुचित रूप से छिपवाने का मुकदमा कदापि न लो । थोड़ा कमाओ, थोड़ा खाओ-पहनो; परन्तु पाप न करो । यही मानवता है । 'सही मुकद्दमा लड़ने के, लिये भी कुछ झूठ मिलाना पड़ता है ?' यह बात दूसरी है । परन्तु झूठ मुकदमा बनाना तो सर्वथा पाप है ।

ध्यान रहे ! दश दिन के जीवन को सम्हलकर अच्छे आचरणों से व्यतीत करदो । नहीं अन्त में हाथ में पश्चाताप आयेगा ।

यदि आप डाक्टर हैं !

यदि आप दवाई में पानी तथा पाउडर मिला कर, रोगी का रोग बढ़ाकर, दवाई में कई गुणा मुनाफा लेकर अनुचित लाभ उठाते हैं; तो विचारिये । आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! मनुष्य को धोखा दे सकते हो। परन्तु अपने दिल को धोखा नहीं दे सकते। जो कुछ करोगे, हृदय में—मनोमय में अंकित हो जायगा, और उसका परिणाम तो भोगना ही पड़ेगा।

ध्यान रहे ! डाक्टरी-वैद्यत्व जन-सेवा के बड़े सुन्दर स्थान हैं। परन्तु जब उनका सदुपयोग करो। दवाई का उचित दाम लो। रोगी से उचित पारिश्रमिक लो। गरीबों की यथाशक्ति निःशुल्क भी चिकित्सा करो।

ध्यान रहे। सचाई से चलकर आप धन-यश और लोक परलोक दोनों बना सकते हैं। डाक्टर-वैद्य के सामने तो हरक्षण शिक्षा रहती है। रोगी, असाध्य-रोगी तथा मरणासन्न व्यक्ति हर समय मिलते रहते हैं। संसार की असारता, दुःखरूपता एवं क्षणभंगुरता की शिक्षा लेते रहो।

ध्यान रहे! किस दवाई का क्या दाम है ? इसका ज्ञान साधारणतः लोगों को नहीं रहता। अतएव इस भोली जनता को ठगियेगा नहीं। यदि आप दूसरे को ठगते हैं, तो निश्चय समझें, दूसरा नहीं ठगा जा रहा है, बल्कि आप स्वयं अपने को ठगा रहे हैं।

ध्यान रहे सेवा का ऐसा सुन्दर अवसर पाकर लोभ-लालच एवं भोग विलास में फँसकर खराब न करिये। आजकल प्रायः डाक्टर शीघ्र धनी होना चाहते हैं। जो शीघ्र धनी होना चाहता है उससे पाप-पर-पाप हुए बिना रह नहीं सकता। अतएव सरलतापूर्वक अपना निर्वाह करो, सचाई से जनता की सेवा करो।
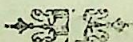
यदि आप विद्वान हैं !

यदि आप अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य न जाने कितनी भाषा पढ़कर और इसी में आप अपने को पूर्ण मानते हैं, और जो आप के सदृश नहीं पढ़ा है, उसे तुच्छ देखते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप संस्कृत को देव-भाषा मानकर और केवल उसके घोखने में अपनी मुक्ति या पूर्णता मान लिये हैं। जो अधिक नहीं पढ़ा है, उसे यथार्थ ज्ञान होगा ही नहीं। यदि ऐसी आप की धारणा है, तो विचार कीजिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! अंग्रेजी-संस्कृत आदि जितनी भाषायें हैं, सब काल्पनिक रूढ़ियाँ हैं। जितनी लिपियाँ हैं, सांकेतिक चिन्ह हैं। अतएव सब भाषायें वस्तु का बोध कराने के लिये, अपनी बात समझाने तथा दूसरे की बात समझने के लिये है; और यही काम प्राकृत भाषा में भी चलता है। अतः विद्या का मद[1] नितान्त व्यर्थ है।

ध्यान रहे ! अधिक विद्या सुखाध्यास (आराम,

१—'धन मद सबको नाच नचावे, विद्या मद बरबादा।'

तलबी), रजोवृत्ति, प्रापंचिक प्रवृति, मद तथा अधिक चंचलता चक्र-प्रवृद्धि बढ़ाती है। अतएव अधिक विद्या मोक्ष का साधन न समझकर भोग का ही समझना चाहिये।

ध्यान रहे ! यदि अधिक विद्या पढ़ने से सत्यका बोध हो जाता,तो शंकराचार्य, बौद्धाचार्य,जैनाचार्य, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, दयानन्द जी आदि के ज्ञान में समता हो जाती। जब विद्वानों को ही सत्य का ज्ञान होता है,तब उपर्युक्त विद्वानों का एक मत क्यों नहीं ?

ध्यान रहे ! यदि नम्रता-आचरण नहीं आया तो चार अक्षर पढ़कर लोगों से दन्तकटाकट करते रहोगे। मदवश दूसरे की भाषा में त्रुटि खोजते रहोगे। अभिमान में चूर होकर शास्त्रार्थ के लिये छाती ठोंकोगे। कहीं जीतोगे तो और अधिक मद बढ़ेगा। हारोगे तो लज्जित होकर मरने के दाखिल हो जाओगे।

ध्यान रहे ! अपनी भावुकतापूर्ण एवं उदार अवस्था को यदि अक्षर रूपी भूषी के कूटने में ही बिता दोगे, तो शान्ति के लिये साधन-संयम कब करोगे। उस विद्या का आचरण करके अपने और समाज के लिए हित की बातें कब दोगे। सन्त विनोबा भावे का वचन है "लम्बी चौड़ी पढ़ाई के नीचे प्रतिभा दबकर मर जाती है।"

ध्यान रहे ! बहुत पढ़ लिख लेने से आप बहुत बड़े लेखक, कवि, प्रवक्ता, आदर्श तथा प्रतिभाशाली

नहीं हो सकते। इसके लिये पूर्वजन्मों के प्रारब्ध-बलिष्टता की महान आवश्यकता है। हाँ आज आप में सच्चरित्रता होनी चाहिए। कल्याण साधन में आप बिलकुल स्ववश हैं। उसके लिए प्रारब्ध की आशा नहीं करनी है।

ध्यान रहे ! नम्रता[1], सदाचरण आदि ही विद्या का फल है। यदि यहन हीं है, तो विद्या केवल प्रमाद-वर्द्धक है।

स्वामी शंकराचार्य रचित विवेकचूड़ामणि के वचन सदैव स्मरणीय हैं—

श्लोक-"वीणाया रूप सौन्दर्यं तन्त्री वादन सौष्ठवम् ।
प्रजारञ्जन मात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते ॥५९॥
वाग्वैखरी शब्दक्षरी शास्त्र व्याख्यान कौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तए न तु मुक्तए ॥६०॥
अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला॥६१॥
शब्द जालं महारण्यं चित्त भ्रमण कारणम् ।
अतः प्रयत्नाज्जातव्यं तत्वज्ञातत्त्व मात्मनः ॥६२॥

अर्थ—"जिस प्रकार वाणी का रूप, लावण्य तथा तंत्री को बजाने का सुन्दर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की

१—दो०-विद्या विनय विवेकता शम दम समता भाव।
दया क्षमा सन्तोष उर, धारे शील स्वभाव ॥

प्राप्ति नहीं हो जाती ॥५६॥ इसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र व्याख्यान की कुशलता, और विद्वता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं ॥६०॥ परमतत्त्व को यदि ना जाना तो शास्त्र-अध्ययन निष्फल (व्यर्थ) ही है, और यदि परम् तत्त्व को जान लिया तो भी शास्त्र-अध्ययन निष्फल अनावश्यक ही है ॥६१॥ शब्द जाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान वन है, इसलिये किन्हीं तत्व ज्ञानी महात्मा से प्रयत्न पूर्वक आत्म तत्त्व को जानना चाहिये ॥६२॥"

प्राचीन नीतिकार अप्पयदीक्षित कहते हैं—

श्लोक नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपिभवन्ति शास्त्रज्ञाः।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः ॥

नीति शास्त्र के पण्डित, ज्योतिषी, चतुर्वेदी, शास्त्री और ब्रह्मज्ञानी बहुत मिलते हैं। परन्तु अपने अज्ञान को समझने वाले विरले ही मिलते हैं।

महाभारत में युधिष्ठिर जी कहते हैं—

पठकाः पाठकाश्चैव चान्येशास्त्र विचिन्तकाः।
सर्वेव्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः ॥

"पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और शास्त्रों के चिन्तन करने वाले सब व्यसनी और मूर्ख हैं। पण्डित तो वही है, जो क्रियावान् (आचरण सम्पन्न) है।"

यदि आप मित्र हैं !

यदि आप किसी के मित्र हैं। परन्तु अपने मित्र के दुःख से यदि आप दुखी नहीं होते। यदि मित्र के दुःख में सहायक नहीं होते। यदि मित्र से कपट रखते हैं। यदि मित्र के कुकर्मों का उसके सामने समर्थन एवं पृष्ठपोषण करते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे !चोर, व्यभिचारी, हिंसक, मद्य-पियाउक, नशेबाज, दुर्व्यसनी, अभक्ष्य-सेवी, परपीड़क, जुवाड़ी आदि कुमार्गगामी को यदि आप मित्र बनाते हैं, तो निश्चय समझिये, आप पत्थर की नौका पर चढ़कर समुद्र-पार जाना चाहते हैं। आप की नौका मझधार में कौन कहे पास ही में डूब जायगी। अतः ऐसे लागों के प्रेम-बैर से दूर रहिये।

ध्यान रहे ! शिष्ट, सुशील, नम्र, सत्संगी, सदाचारी, परोपकार-रत को मित्र बनाइये। अच्छे पुरुषों से मैत्री, तथा संगत करने से अच्छाई तथा बुरे से मित्रता एवं संगत करने से बुराई आती है। इसीलिये श्री कबीरदेव कहते हैं—

संगत कीजै साधु की, हरे और की व्याधि ॥
ओछी संगत क्रूर की आठो पहर उपाधि॥

गोस्वामी जी कहते हैं:—

व्योमचढ़े रज पवन प्रसंगा। कीचड़ मिलैनीच जलसंगा।
साधुअसाधुसदनशुकसारी। सुमिरहिं एकदेयगनिगारी॥

ऊपर चलने वाले वायु की संगत से धूल आकाश में चढ़ जाती है; परन्तु नीचे बहने वाले जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है। अच्छे और बुरे के घर में पाले हुए जैसे तोता-मैना, एक राम-राम कहता है और एक गाली देता है।

इसी प्रकार अच्छे मित्रों की संगत करने से अच्छाई तथा बुरे मित्रों से मित्रता करने से बुराई आती है।

सच्चे मित्र के लक्षण इस प्रकार होते हैं :—

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहति गुणान प्रकटी करोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्र लक्षणमिद प्रवदन्ति सन्तः॥

अर्थात् :—मित्र को पाप कर्म से रोके, हितकारी कार्य में लगावे, उसके छिपाने योग्य (दोषों) को छिपावे, उसके गुणों को सबके सन्मुख प्रकट करे। आपत्तिकाल में मित्र का त्याग न करे, समय पड़ने पर धन से भी सहायता करे—यही सच्चे मित्रों के लक्षण हैं—ऐसा सन्त कहते हैं।

यदि आप भक्त हैं !

यदि आप माया में अधिक लिप्त हैं। यदि आप काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर में अधिक लीन हैं। यदि सन्तों को आते हुए देखकर मुख छिपाते हैं। चौबीस घण्टे में एक-दो घन्टे सत्संग करने, सद्ग्रन्थ पढ़ने तथा भजन-पूजन ध्यान चित्त-निरोध के लिये समय नहीं निकालते हैं तथा दान-सेवा नहीं करते, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! आप का कर्तव्य है, सदैव विवेक सम्पन्न सन्तों का सत्संग करें, उनकी भक्ति सेवा करें। और सत्संग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय कर असत्य का त्याग तथा सत्य का ग्रहण करें।

सन्तों का कथन है—

पर मन पर धन हरण हित, वेश्या परम प्रवीन।
तुलसी सोई चतुर हैं, सन्त चरन लवलीन॥
जेहि घर सन्त न आवहीं श्रद्धा सेवा नाहिं।
सो घर मनहु मसान है, भूत बसै तेहि माहिं॥
अन्त समय आयो निकट, देखि खोलि के नैन।

नारायण सुख भोग में, तू लम्पट दिन रैन ॥
सन्त सभा झांकी नहीं, कियो न हरि गुन गान ।
नारायण तू कौन विधि, फिर चाहत कल्यान ॥
जो तू आया जगत में, तो ऐसा करि लेय ।
करु साहेब की बन्दगी, भूखे को कछु देय ॥
या दुनिया में आयके, छाड़ देय तू ऐंठ ।
लेना है सो लेय ले, उठो जात है पैठ ॥

यदि आप ब्रह्मचारी हैं !

आप जुल्फी रखते, बाल झाड़ते, बाल-मूछें टेढ़े-मेढ़े कटाते, कालरदार, गोटे पट्टेदार, चुनावदार, छीटदार, छापदार, किनारदार, रंग-विरंगे कोट-बूट, पेंट, कमीज, टाई कलाई घड़ी आदि यदि आप पहनते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप नाच-सिनेमा देखते अनावश्यक शहर-बाजार टहलते; रेडियो, अखबार प्रपंचपत्रिका, उपन्यास, अश्लील नाटक, संगीत, वाद्य, क्लबक्रीड़ा इत्यादि में मस्त रहते हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप स्त्रियों के समूहों में रहने के प्रेमी हैं। यदि आप स्त्रियों की संगत में अपने पतन का हेतु नहीं देखते। यदि आप विषय लम्पट युवको, प्रपंची मनुष्यों की अधिक संगत करते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप साग-दाल प्रभृति में अधिक मसाले नमक, अधिक चटपटेदार खाने के प्रेमी हैं। यदि आपको लहसुन-प्याज बहुत अच्छे लगते हैं। यदि

आप मिठाई, खटाई, तिताई तथा चर्फरे के व्यसनी हैं। यदि आप खूब ठूस कर खाते हैं। क्या, कैसे और कितना खाना चाहिये, इसका विचार यदि आपको नहीं है; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप को अपने शरीर की सेवा करवाना बड़ा अच्छा लगता है। अपने शरीर का मर्दन करवाने के व्यसनी हैं। यदि आप दूसरे बालक तथा युवकों का अनावश्यक स्पर्श करते तथा उनसे अपने शरीर का व्यर्थ में स्पर्श करवाते हैं। यदि आपके सब व्यवहारों में चंचलता भरी हुई है, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! ब्रह्मचारी को फैशन विलास, दुर्व्यसन, शौक-स्वाद, अमीरी, कुसंग, सैल सपाट, परावलम्बता इत्यादि का सर्वथा-सर्वदा-सर्वत्र त्याग करना चाहिए।

ध्यान रहे ! ब्रह्मचारी को सात्विक वेष-भूषा सरलता, स्वच्छता, सदाचार, सद्ग्रन्थावलोकन, सत्संग, सन्त सेवा, सद्विचार, सद्धारणा, सत्स्वरूप में स्थिति तथा शान्ति का ही निरन्तर अवलम्ब रखना चाहिये। (यह प्रसग साधु-सगी कल्याणार्थी ब्रह्मचारियों का है)
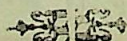
यदि आप साधक हैं !

शुद्ध निर्वाह के अतिरिक्त यदि आप मनःकल्पित भोगों के भोगने में मस्त हैं। यदि आप खाने-पीने, पहनने ओढ़ने बात-बर्ताव करने में राजा बाबू ही बने रहना चाहते हैं। यदि आप प्रपंच वार्ता, प्रपंच क्रिया तथा मनोराज्य में ही सदैव विचरण करते रहते हैं। यदि आपको अपनी प्रतिष्ठा की बड़ी भूख है। यदि आप अपनी मान-बड़ाई-पूज्यता के लिए दूसरे का दुःख नहीं देखते। सर्वत्र अपनी पुजापा प्रतिष्ठा के लिये यदि आप अन्य की निन्दा-ईर्ष्या करने में नहीं चूकते, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

धन पृथ्वी, मन्दिर तथा शिष्य-शाखा के लिये ही यदि आप का जीवन सर्वतोभाँति से समर्पित हो गया है, तो निश्चय आप बड़े विपथ में पहुँच गये है।

पैसा छूना, पूड़ी दूध खाना, उत्तम वस्त्र पहनना त्यागकर नंगे, अकेले, मौनी रहकर, केवल इन थोड़े ऊपरी कड़े-कड़े साधनों से यदि आप अपने को कृत्य-कृत्य मानकर अन्य विचारशील पुरुषों को तुच्छ देखते हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! साधक को अपनी प्रतिष्ठा, मान-बड़ाई को विष तुल्य समझना चाहिये । पर-निन्दा और ईर्ष्या साधन के शत्रु हैं । इसे दूर से सर्पवत् त्याग करना चाहिये, और इनका त्याग तभी होगा, जब अपनी मान बड़ाई पर तिरस्कार-दृष्टि होगी । योगवाशिष्ठ में वशिष्ठ जी श्री राम जी से कहते हैं—

"श्री राम ! उन महात्माओं को एकान्त-सेवन असम्मान प्रतिकूल-स्थिति तथा साधारण लोगों द्वारा की गयी अवहेलना—ये सब जैसा सुख पहुंचाते हैं, वैसा सुख उन्हें बड़ी बड़ी समृद्धियाँ नहीं दे सकतीं ।'

ध्यान रहे ! शुद्धनिर्वाह के अतिरिक्त मनःकल्पित भोगों तथा इसके विपरीत बहुत कठोर काया-कष्ट का साधन ये दोनों विवेक-हीनता के लक्षण हैं । भोगों का तथा अत्यन्त कठोर साधना का त्याग करके जितने में सरलता से जीवन निर्वाह हो जाय, ऐसी वस्तुओं का उपयोग करते हुए, सत्संग-विवेक तथा अभ्यास वैराग्य द्वारा मन इन्द्रियों को अपने अधीन करना चाहिये ।

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज कहते –

माधो मोह फाँस किमि टूटै ।

बाहर कोटि उपायकरिय, अभिअन्तर ग्रंथि न छूटै ॥१॥

घृत पूरण कराह अन्तर्गत, शशि प्रतिबिम्ब दिखावै ।

इन्धन अनल लगाय कल्पशत औटत नाश न पावै ॥२॥
तरु कोटर महँ बस विहंग, तरु काटैं मरै न जैसे।
साधन करिय विचार हीन,मन शुद्ध होय नहिं तैसे ॥३॥
अंतर मलिन विषय वश मन,तन पावन करिय पखारे।
मरै न उरग अनेक यतन,बल्मीक विविध विधिमारे॥४॥
तुलसीदास हरि गुरु करुणा बिन,विमल विवेक न होई।
बिन विवेक संसार घोर निधि,पार न पावै कोई ॥५॥

दोहा—देह सुखाय पिञ्जर करे, धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना, बिना विचारे ज्ञान ॥

अर्थः—ऐ माधो ! मोह की फाँसी कैसे कटे ? बाहर करोड़ों उपाय किये जायँ परन्तु हृदय-भीतर की अज्ञानग्रन्थि नहीं छूटती ॥१॥ घी से भरे हुए कराह में चन्द्रमा की परछाईं दीख पड़ती है। इन्धन और आग जलाकर सौ कल्पों तक यदि उसे औटाया जाय, परन्तु (कराह में घी रहने तक) परछाईं का नाश नहीं होगा ॥२॥ पेड़ के खोड़ले में रहा हुआ पक्षी जैसे पेड़ काटने से नहीं मरता। ईसी प्रकार विवेक-रहित साधन करने से, मन शुद्ध नहीं होता ॥३॥ भीतर में मन तो विषयों के वश मलीन बना हुआ है, फिर शरीर को धोने से वह कैसे पवित्र होगा। अनेक उद्योग तथा नाना प्रकार से बाँबी-पीटने पर भी क्या सर्प मर सकता है।॥४॥ गोस्वामी जी

कहते हैं कि हरि गुरु की कृपा—(सत्योपदेश) प्राप्त हुए बिना, निर्मल-विवेक नहीं उत्पन्न हो सकता। और बिना विवेक के घोर ससार-सागरको कोई पार नहीं पा सकता ॥५॥

शरीर को सुखा कर चाहे कोई पिंजर कर दे और रात-दिन ध्यान धारण करे परन्तु बिना ज्ञान का विचार किये वासनायें नहीं मिट सकतीं।

गुरुवर कबीर कहते हैं : -

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहि कबीर ते बाँचिहैं जाके हृदय विवेक ॥
करु विचारबिकार परिहरि। तरण तारण सोय ॥
(बीजक)

यदि आप साधु हैं !

यदि आप साधु का वेष धारण करके भी स्त्री के रोगी हैं। यदि आप गाँजा का दम लगाना ही, मनो-निग्रह का साधन समझते हैं। यदि आप गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू-पान तथा और न जाने क्या क्या उड़ाते रहते हैं। यदि आप देवी-देव भूत-प्रेत-देखते झाड़ते रहते हैं। यदि आप लोगों का भूत-प्रेत चुड़ैल-जिन्द भगा देते हैं, पुत्र धन दे देते हैं रोग दूर कर देते हैं, ज्योतिष भविष्य ज्ञान का भी उपयोग करते हैं; और किसी प्रकार से पैसा-संग्रह करना आप का जीवन-उद्देश्य है, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप घर-गृहस्थियों (जन्मस्थान वालों) का रोग नहीं त्याग सकते हैं। यदि आप भक्तों से पुजा कर घरवालों को देते हैं। यदि आश्रम, शिष्य तथा सम्पत्ति ही आप के लिये सब कुछ है। यदि पीठ-पीछे सबकी लाई-लगाई-बुराई करना, राग द्वेष करना, सबसे लड़ते-झगड़ते-रहना ही आप का कर्तव्य हो गया है। यदि स्नान, भोजन, शयन तथा थोड़ा नियम मात्र पूजा पाठ कर लेने में ही आप अपनी साधना

१—गांजा भांग तमाल उड़ावें। कलयुग सोइ प्रसिद्ध कहावें।

एवं कर्तव्य की इति मान लिये हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप वैराग्यवान् सन्तों से, उनके सद्ग्रन्थों से तथा उनके प्रेम-भक्ति से दूर रहना ही, अपना गौरव समझ रखे हैं। यदि आप संसारियों–जैसा ही प्रपंची बने रहना चाहते हैं। यदि आप का मन साधन भजन सद्ग्रन्थ अध्ययन, एकान्त सेवन में नहीं लगता; तो विचारिये आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! साधु दशा अपने मन इन्द्रियों को साधने के लिये है। प्रयत्न पूर्वक निरन्तर सर्व दोषों का परित्याग करते रहना तथा सर्व सद्गुणों को कटि-बद्धता पूर्वक धारण करना और मनकी मलीनताओं को, मनोवेगों को शान्त कर जीवन को स्ववश-स्वतन्त्र बनाना, यही साधु का निरन्तर का परम कर्तव्य है।

ध्यान रहे ! दूसरे द्वारा प्राप्त अनुकूल-प्रतिकूल मान अपमान तथा स्तुति निन्दा में सम रहना, किसी से न उलझना, शत्रु के द्वेष तथा मित्र के राग से दूर रहना एवं निरन्तर अपने मन, वाणी, कर्म का ही सुधार करना, सदा अपने को ही गढ़ते बनाते रहना–यही तो साधु का पुनीत कर्तव्य है।

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं—

सती लहर घड़ी एक है, शूर लहर घड़ी चार।
साधु लहर है जनम भर, मरै विचार–विचार ॥

(२७)

यदि आप सन्त हैं !

यदि आप संसार भर में धर्म-प्रचार की तृष्णा ही में व्यस्त हैं। यदि आप सबको प्रेमी-भक्त तथा सेवक शिष्य बनाने के असफल प्रयत्न ही में चिन्ताकान्त हैं। यदि आप सबका अभाव करके, सबसे निराश होकर एकान्त—परम-एकान्तस्वस्वरूप-स्थिति में रत नहीं होते; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! 'अभी अन्य काम करलें' आगे स्वरूपस्थिति करेंगे' अन्धकारमय भविष्य जीवन की मोहक आशा के भूमिपृष्ठपर यह कितनी दुर्बल बालू-भित्त खड़ा करना है। नित्य शरीर के अन्त को न देखना, कितना बड़ा प्रमाद है।

ध्यान रहे ! यदि आप में कलह-कल्पना, राग-द्वेष, स्वार्थासक्ति घर किये बैठी हैं। शत्रु-मित्र दोनों आप की दृष्टि में सम नहीं हुए हैं तथा आप में अभी यदि पूरी समता नहीं आयी है, तो निश्चय ही आप सन्त पद तक अभी पूर्ण नहीं पहुँच सके हैं।

ध्यान रहे ! काम-क्रोध लोभादि से सर्वथा रहित

रागद्वेष के पूर्ण विजयी, इन्द्रिय-मन पर पूर्ण अधिकारी अच्छे बुरे गुणी-दोषी जीव मात्र पर दया, प्रेम तथा समता की दृष्टि रखने वाले, भोगों से सर्वथा विरक्त-लोक कल्याण के लिये ही सन्त होते हैं। यही पुनीत आचरण आपका होना चाहिये।

ध्यान रहे ! संसार में सन्त-पद के समान दूसरा पद नहीं है, फिर इससे भी ऊँचा पद तो हो ही कैसे सकता है। ऐसे सन्तों के जीवन तथा शिक्षा से ही संसार को प्रेरणा मिल सकती है। आज जितनी आवश्यकता सच्चे सन्तों की है, उतनी आवश्यकता डाक्टरों तथा वकीलों की नहीं है। अतएव सन्तों को चाहिए कि अपना जीवन पूर्ण बनाकर जनता को प्रकाश दें ?

श्री कबीर साहेब कहते हैं—

सन्त न छाडें सन्तता, कोटिक मिलें असन्त।
मलय भुवंगम बेधिया शीतलता न तजन्त॥

श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

तुलसी सन्त सुअम्बु तरु, फूल फलै पर हेत।
इतते ये पाहन हने, उतते वे फल देत॥

तुलसी सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोय।
अजलिगत शुभ सुमन जिम, सम सुगंध करि दोय॥

इसलिये श्रीकृष्ण जी कहते हैं—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥
(श्रीमद्भागवत ११।१४।१६)

अर्थात्—"अपेक्षा-रहित, मननशील, शान्त, निर्वैरी तथा समदर्शी सन्तों के पीछे मैं इसीलिये घूमा करता हूँ, कि उनके चरणों की धूलि मेरे अङ्गों में पड़ जायगी, तो मैं पवित्र हो जाऊँगा।"

श्रीराम जी नारद जी से कहते हैं—

सुनि मुनि साधुन के गुन जेते ।
कहि न सकत शारद श्रुति तेते ॥

अतएव सन्तों को चाहिये कि उपर्युक्त उद्धरणों को अपने जीवन में उतारें और अपने तथा संसार के तरण-तारण बनें ।
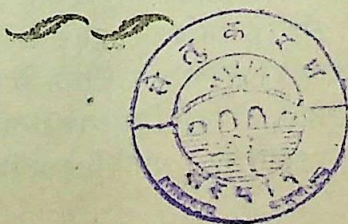
यदि आप सद्गुरु हैं !

यदि आप शिष्य-सेवक बनाने के चक्कर में सदै
संसारियों के पीछे लगे रहते हैं। कोई आप से दीक्ष
ले-ले, तो आप सेवक के सेवक तथा शिष्य के शिष्य
बनने में संकोच नहीं करते। यदि आपके मुमुक्षु-भक्त
को कोई दूसरा गुरु, उस मुमुक्षु की ही प्रबल श्रद्धा
नुसार साधु-वेष देकर अपना शिष्य बना ले, तो आप
उससे वैर ठान लेते हैं। आप के ही भक्तों के श्रद्धा-
प्रेम से यदि कोई दूसरे साधु-गुरु आप के भक्तों में
आ जायँ तथा उन्हीं की प्रबल श्रद्धानुसार किसी को
दीक्षा दे-दें तो आप उन साधु-गुरु से सदा के लिये
या कुछ दिनों के ही लिये ईर्ष्या-द्वेष कर लेते हैं, तो
विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

भक्त शिष्य बनाने के चक्कर में, यदि आप अपने
विवेकी सद्गुरु से शत्रुता ठान लेते हैं। सद्ग्रन्थ अध्य-
यन, एकान्तसेवन, साधन-भजन को तिलांजलि देकर,
यदि आप शिष्य-सेवक के ही निरंतर चक्कर में हैं।
दूसरों को चेतानेके मोहमें, यदि आप अपने होश-हवास
से रहित हैं। यदि आप दूसरे के सेवक-भक्त तथा शिष्य-
मुमुक्षु को अपनी ओर खींचने में अनुचित प्रयास करते
रहते हैं, तो विचारिये आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! त्रिविधिताप से त्राण पाने के लिये

था अपने कल्याणार्थ आप साधु हुए हैं। इस कार्य
ो त्याग कर, दूसरे को चेताने के ही चक्कर में
हना बहुत बड़ी भूल है।

ध्यान रहे! काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से
र्वथा रहित भक्ति, विवेक एवं वैराग्य में तत्पर,
वयं गुरुपद (श्रेष्ठ स्वस्वरूप चेतन) में जो स्थिति
है। जो विषय-दुर्गुण अन्धकार से सर्वथा मुक्त तथा
ज्ञान-सदाचरण के प्रकाश से प्रकाशित है, वही सद्-
गुरु है। ऐसी योग्यता आप में होनी चाहिये।

ध्यान रहे! जो पूर्ण सद्गुरु होते हैं, वे शिष्य से
कोई स्वार्थ-कामना नहीं रखते। अनुचित शासन-
ताड़न नहीं रखते। शिष्य की त्रुटियों से नहीं उलझते।
सदैव, सन्तोषी, विरक्त, तितिक्षु, समतालु, कभी
ईर्ष्या-क्रोध न करने वाले, दुर्वचन न कहने वाले और
सदैव मीठा वचन बोलने वाले तथा मीठा बर्ताव
करने वाले होते हैं। अपने अपराधी का भी हित
सोचने वाले, विशाल-हृदय, समता की सीमा, शरण-
रक्षक, निरन्तर परमार्थ-प्रेमी होते हैं। वे जगत्-
कामना से हीन होते हैं! अतः किसी से राग-द्वेष
फिर क्यों करें?

उपर्युक्त प्रकार से ही सद्गुरुओं का उच्च आदर्श
होता है। सोई बनाना परम कर्तव्य है।

यदि आप शिष्य हैं ?

यदि आप विवेकी सद्गुरु की आज्ञा नहीं मानते यदि आप को अपने वाक्यज्ञान, विद्या, प्रवचन-शैली लोकप्रियता एवं प्रचार का अभिमान है। यदि नम्रता यथायोग्य सेवा-भाव की आप में कमी है; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! अपने सेवक-शिष्यों में बैठ कर सद्गुरु की भक्ति का आप बड़ा लम्बा-चौड़ा व्याख्यान करते हैं। परन्तु योग्य विवेकी सद्गुरु-सन्तों के समक्ष आप में भक्ति के कोई लक्षण नहीं दिखते। फिर आप के भक्ति-परक व्याख्यानों का क्या आदर्श या प्रभाव होगा ?

ध्यान रहे ! सद्गुरु तथा विवेकी सन्तों की शरीर से सेवा, मन से उनमें श्रद्धा-प्रेम तथा वाणी से उनसे मधुर भाषण करना चाहिये। मन, वचन कर्म से विवेकी सद्गुरु-सन्तों का जीवन पर्यन्त आधार लिये रहना चाहिये। सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं :—

उपकारिन में उपकार गुरु, दानिन में गुरु दान।
रक्षक में रक्षक गुरू, गुरु सम अन्य न आन॥

ध्यान रहे ! विवेकी साधु--सद्गुरु से छलकपट, विश्वासघात करना तथा उनकी निन्दा करना तो शिष्य के लिये बहुत ही अपराध है।

श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

संत कहैं अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होय न विमल विवेक उर, गुरु सन किये दुराव॥

ध्यान रहे ! सद्गुरु का ताड़न-शासन अमृत समझे। जब गृहस्थी में स्त्री-पुत्र तक का सहना पड़ता है। तब कल्याण के लिये वैराग्यवान् सद्गुरु-सन्तों का क्यों न सहे ? चाहे गुरु से दूर रहे या निकट; परन्तु उनका सदैव डर माने, उनमें श्रद्धा-भाव रखे। उनकी छोटी-मोटी त्रुटियों पर अपना चित्त दोषी न करे।

ध्यान रहे ! अपने से बन सके तो समयानुसार समाज के सुधार के लिये गुरु से अपना नम्र निवेदन प्रकट करे, न बन सके तो चुप रहे। परन्तु उनकी छोटी-छोटी त्रुटि पर न व्यर्थ आलोचना करे और न अनुकरण, पोषण या समर्थन ही। उनका उत्तर-दायित्व उनके ही ऊपर है।

ध्यान रहे ! शिष्य को तो जीवन-पर्यन्त सद्गुरु-सन्तों का आधार बनाये रखना ही कर्तव्य है।

गुरुवर विशालदेव की साखी स्मरणीय है—

नहीं सहायक साधु को, गुरु तजि जग में और।
ताते सब उन्माद तजि, सजग रहे सब ठौर॥

यदि आप महन्त या मठाधीश हैं !

यदि आप को पैसा इकट्ठा करने में आनन्द है यदि आपके मठ पर अतिथि-सन्तों की उदारभाव से सेवा नहीं होती। यदि विचरन्त-विरक्तों को आप मंगते या तुच्छ समझते हैं। सन्तों के भण्डारा-वस्त्र, छात्रों की वृत्ति, गरीबों की रक्षा तथा धर्मग्रन्थों के प्रकाशन-प्रचारन आदि लोक-हिताय कार्यों में यदि आपकी थैली नहीं खुलती। बल्कि रात-दिन संसारियों जैसा ही प्रपंच में फंसे भोग-विलास तथा अनर्थ में द्रव्य स्वाहा कर रहे हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आपको धन का, मठ-मन्दिर का, पृथ्वी-वैभव का, शिष्य-शाखा तथा मान-बड़ाई-पुजापा का अभिमान है; और अपने बराबर दूसरे को नहीं समझते। यदि आप सबको रे—तू कहते हैं। यदि आप अन्य सन्तों का विनम्रता पूर्वक-दण्डवत्-बन्दगी, आदर नहीं कर सकते, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

सेवकों-भक्तों गृहस्थों को तो यह उपदेश दिया

जाता है कि 'घर धर्मशाला है, कुटुम्बी-नौकर सब
पथी हैं भोग-एश्वर्य नाशवान् हैं, मान-बड़ाई झूठे हैं।
अतः नम्र रहना चाहिये। अतिथि का सत्कार करना
चाहिये। इत्यादि।'

और स्वयं साधु-महंत-गुरु आदि बनकर मठ-धन-
ऐश्वर्य, शिष्य-शाखा को सत्य मानकर उनका अभि-
मान किया जाय तथा अतिथि-सन्तों का उचित आदर
न किया जाय, फिर उपदेश देने का क्या फल है ?

ध्यान रहे ! मठ-समाज* का व्यवहार चलाने के
लिये ही सन्तों-द्वारा महन्त बनाये जाते हैं। अतः
उन्हें अपने को बड़ा मानकर, सबको तुच्छ नहीं सम-
झना चाहिये। बल्कि सन्तों की सेवा करते हुए,
व्यवहार ठीक से चलाते हुए; नम्र रहना चाहिये।

'सन्त-महन्तों सुमिरो सोई।
जो काल फास से बाँचा होई॥' (बीजक)

ध्यान रहे ! महन्त अपने ही अच्छा खाने-पहनने की
इच्छा न करें। त्याग-तितिक्षुभाव से रहें। मठ-मन्दिर में

---

* महन्त मठाधीश तथा सन्तों को अपना आचरण
कैसे रखना चाहिये। इसको भलीभांति जानने के लिये
मठाधीशों के परमादर्श, वैराग्यतत्पर, जीवन्मुक्त सद्गुरु
श्री काशीसाहेब के 'निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन' का तीसरा
प्रकरण पढ़ना चाहिये।

तो दासी या साधुनी आदि किसी रूप में भी, स्त्र
नहीं रहनी चाहिये ? अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन
उदारता, सन्तसेवा, वैराग्य, धर्म-रक्षा आदि गु
रहने महन्त में अनिवार्य हैं। सन्तों के ऊपर अप
को कर्ता (मालिक) न मानकर अपने को सेव
मानना चाहिये।

ध्यान रहे ! केवल साधारण धर्म के पालन ही
अपने कल्याण (स्वरूपस्थिति) की सावधानी
नष्ट होने पावे।
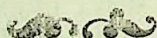
यदि आप अधिकारी या कोठारी हैं !

यदि आप सबके ऊपर शासन-ताड़न करते हैं। उदारता पूर्वक यथायोग्य समाज-सेवा में वस्तु नहीं लगाते। सबसे ऐंठ कर बोलते हैं। अपने को समाज का सेवक न मानकर समाज का कर्ता (मालिक) मानते हैं। अपने स्वार्थ के आगे समाज को कुछ नहीं गिनते; तो विचारिये आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! समाज की सेवा के लिये समाज ने आपको अधिकारी-कोठारी बनाया है। आप में नम्रता-समता और सेवा का भाव भली-भाँति होना चाहिये। किसी को शासनपूर्वक कोई काम करने को आप न कहें। ऐसी बातें बोलें, मानो आपके मुख से फूल झड़ रहे हैं। नम्रता-समता तथा प्रेम से जितना आप दूसरे को अपने वश में कर सकते हैं, शासन से नहीं।

यदि आप भण्डारी हैं !

भण्डार घर में पैर रखते ही, यदि आप गरम हो जाते हैं। सबको टेढ़ी सीधी-सुनाते रहनेमें ही, यदि आप अपना गौरव मानते हैं। आप भोजन बनाते हैं, तो आप मानो सबके साथ बड़ी सहानुभूति करते हैं। यदि आप भोजन परोसते समय अनुचित पंक्ति-भेद करते या अपने खान-पान स्वार्थ के लिए न्याय-विरुद्ध बरतते हैं, तो विचारिये आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! भण्डार बनाने का अधिकार यदि आप को मिला है, तो अपना सौभाग्य समझिये, समाज-सेवा का शुभ अवसर मानिये और बड़े आदर तथा श्रद्धा पूर्वक भण्डार बनाकर हर्ष तथा प्रेम पूर्वक पंक्ति भेद-रहित परोसिये। प्रायः सबको खिला कर खाइये। अतिथि आदर तथा सेवा के लिये अधिक ध्यान रखिये।

यदि आप किसी मठ-महन्त या समाजाधीश के आश्रित हैं !

यदि आप किसी महन्त या मठ के आश्रित हैं। अथवा किसी श्रेणी के, समाज-प्रबन्धक के आधार में रहते हैं, परन्तु यदि आप उनका आदर नहीं करते, उनकी मर्यादा नहीं मानते, उनकी छोटी-छोटी त्रुटियों को सहस्रों नेत्रों से देखते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! जिसके ऊपर पूरे समाज का भार है, उससे यदि व्यवहार में कुछ त्रुटि भी हो जाय, तो उसका सुधार करना चाहिये। उसकी व्यर्थ आलोचना नहीं करना चाहिये। जो पूरे मठ-मन्दिर का एवं समाज का भार लेकर चलते हैं। उनकी सेवा में, उनके खान-पान में, उनके व्यवहार में समय-योग्यतानुसार अधिक ध्यान समाज-द्वारा स्वतः होना चाहिए।

ध्यान रहे ! बिना मर्यादा, श्रद्धा तथा प्रेम के कोई मठ, संस्था, समाज या दो व्यक्ति की संगत भी, चल नहीं सकती। अतः मर्यादा-पालन, श्रद्धा, प्रेम-नियम सदैव बनाये रखना चाहिये।
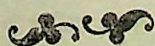
यदि आप विचरणशील साधु हैं !

यदि आप विचरणशील एवं भ्रमणशील हैं; परन्तु यदि आप मठाधीश-सन्तों को गृहस्थ समझते, उन्हें तुच्छ-दृष्टि से देखते हैं; पद-पद पर उनकी केवल आलोचना एवं नुक्ताचीनी करते हैं, और स्वयं आप न जाने कौन कौन सी वासना में रात-दिन उड़ते रहते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! केवल आप विचरणशील होने से विरक्त नहीं हो सकते, और कोई केवल मठ-मन्दिर में होने से बन्धमान नहीं हो गया । वैराग्यप्रवर जीवन्मुक्त गुरुदेव श्री काशी साहेब भी मठाधीश्वर थे। मणिराम-छावनी के बाबा श्रीरामशोभादास जी महाराज भी मठाधीश थे। परन्तु वे जल में कमल-पत्तवत् ही जीवनपर्यन्त व्यवहार किये। हाँ ! कितने मठाधीश मायामय हो जाते हैं, तो कितने विचरणशील भी आचरण-हीन, केवल अभिमान की ही मूर्ति बने रहते हैं।

विचरणशीलों में परमादर्श वैराग्यप्रवर जीवन्मुक्त गुरुदेव श्री विशाल साहेब का समतामृत वाक्य ही सबको ग्रहणीय एवं अनुकरणीय है। वे कहते हैं:—

लौकिक आश्रम हीन कोइ, कोई आश्रम युक्त ।
रहत पारखी सन्त इमि, रहस्य बोध गहि मुक्त ॥
(सत्यनिष्ठा)

अर्थात्—कोई सांसारिक मठ-मन्दिर से रहित विचरणशील होते हैं और कोई मठ-मन्दिर के सहित होते हैं। इस प्रकार दो विधि से विवेकी सन्त रहते हैं। स्वरूप-बोध और आचरण ग्रहण करने से ही दोनों का मोक्ष है।

ध्यान रहे ! किसी के मठ-मन्दिर पर जाकर या किसी गृहस्थ के घर जाकर यदि आदर, आसन, अशन मनोनुकूल न मिले; तो उलझन, असन्तोष, नुक्ताचीनी करना आप का कर्तव्य नहीं है।
गोस्वामी जी की यह उक्ति सदैव स्मृति में रखिये—

"सन्त सुखी विचरन्त मही।
सन्मान निरादर आदरही ॥"

ध्यान रहे ! किसी के मठ-मन्दिर पर जाकर या किसी गृहस्थ के यहाँ जाकर अपने लिये किसी वस्तु की यांचना न करिये। उत्तम चावल, साग, घी, दूध दही इत्यादि की इच्छा ही न रखिये। जो कुछ प्रारब्ध में मिल जाय, विवेकयुक्त अपनी प्रकृति के अनुकूल ग्रहण कर लीजिये।

ध्यान रहे ! किसी के मठ-मन्दिर या समाज में जाकर, वहाँ की मर्यादा तथा नियम को भङ्ग न

कीजिये। जैसे पजा-पाठ में सम्मिलित होना, आरती में ठीक से हाथ जोड़ कर खड़े होना, अमनिया-सेवा-बन्दगी तथा भोजन-शयन के उचित समय पर उपस्थित होना परम उचित है।

ध्यान रहे। यदि आप मूर्ति नहीं पूजते या दूसरे मत के किसी प्रतिष्ठित संत पुरुष को पूज्य नहीं मानते, परन्तु यदि वहाँ आप गये हैं, और वहाँ आरती आदि हो रही है, तो आप का भी हाथ जोड़-कर आरती में खड़ा होना उचित एवं सभ्यता है। अथवा ऐसे स्थल पर आप बिलकुल जांय ही न।

ध्यान रहे! किसी के धार्मिक मर्यादा, शिष्टा-चार तथा नियम को मन, वचन, कर्म से ठेस न पहुँ-चाइये। मठ-मन्दिर या नाना मतों की धर्ममर्यादाओं में जो साधारण जनता का हित समाया हुआ है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। अपने धर्म का पालन करना तथा दूसरे के धर्म का आदर करना सम्पूर्ण मानव का कर्तव्य है। हाँ! धर्म में हिंसा एवं विषय-वासना नहीं होती। वास्तव में सबका धर्म एक है।

यदि आप लेखक, कवि एवं प्रवक्ता हैं !

यदि आप सारे संसार की तो आलोचना कर लेते हैं, परन्तु अपनी आलोचना नहीं कर पाते। यदि आप सबको कर्तव्य की शिक्षा देते हैं, परन्तु अपना क्या कर्तव्य है—इसका ध्यान नहीं है। यदि आप दूसरे के चेताने की तृष्णा में, स्वयं अचेत हो गये हैं। यदि आप अपनी कविता में आकाश-पाताल के कुलावे तो मिला देते हैं, परन्तु अपने मन-इन्द्रियों का संयम नहीं कर पाते। यदि आप की कथनी रूपी पौधे इतने बढ़ गये हैं, कि करनी रूपी फल जिसमें लग ही न सकें। यदि आप सबको अपनी ओर खींचने एवं रिझाने में स्वयं रीझ गये हैं, तो विचारिये। आप किधर जा रहे हैं ?

"सत्संग की जितनी युक्ति हम जानते हैं, दूसरे नहीं जानते। अन्य सब भोंदू हैं, हम बड़े प्रवक्ता, विद्वान हैं'—यदि ऐसी आपकी धारणा है, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! प्रवक्ताओं एवं विद्वानों को, अपने दोषों को ढांकने के लिये, बहुत युक्तियाँ ज्ञात रहती

हैं। अतएव नित्य अपने दोषों को ढाँकते रहना और अन्यों के कर्तव्य की नित्य शिक्षा देते या आलोचना करते रहना—यह उसके बिगड़ने का साधन बन जाता है। अतः सावधान।

ध्यान रहे! केवल शिक्षा देने की ही चेष्टा रखना और शिक्षा ग्रहण करने की चेष्टा न करना—यह बहुत बड़ी त्रुटि है। स्वामीरामतीर्थ जी ने कहा है—"जिसे हर कोई देने को तैयार रहता है पर लेता कोई नहीं, ऐसी बस्तु क्या है। उपदेश, सलाह।"
श्रीगोस्वामी जी भी कहते हैं :—
पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

श्री कबीर साहेब कहते हैं :—

औरन को सिखलावते, मोहड़े परिगो रेत।
रास बिरानी राखते, खाइन घर का खेत॥

ध्यान रहे! यदि अपना नित्य निरीक्षण नहीं रखा जाय और वैराग्य-विवेक का अभ्यास, एकान्त-सेवन, सद्गुरु-सन्तों की निष्ठा छोड़ दिया जाय, तो प्रवक्ताओं का पतन रखा-रखाया है। वाणी का वैभव कम माया नहीं है। जो अपने तथा दूसरे के कल्याणार्थ न समझकर, इसे भोग तथा मान-बड़ाई का साधन मान लेता है; उसके बिगड़ने में क्या विलम्ब है ?

ध्यान रहे! यदि सुधार की दृष्टि हो, तो प्रवक्ताओं का कल्याण-कार्य सरल है। क्योंकि उसका अध्ययन

मनन विशाल होता है। ज्ञान की युक्तियों को उसे अधिक सीखना होता है ! जो सदैव धर्म-भक्ति तथा विवेक-वैराग्य की एवं सुधार की बातें कहता रहता है; उसका प्रभाव अपने ऊपर न पड़े—यह कैसे हो सकता है !

ध्यान रहे ! सबको अच्छाई का मार्ग बताने वाला यदि स्वयं अच्छे मार्ग पर न चले, तो उसकी शिक्षा का क्या महत्त्व है ? इस बात का गहराई से विचार करने पर, प्रवक्ताओं का सुधार हो सकता है !

ध्यान रहे ! संसार भर का ज्ञान संग्रह कर लेना सरल तथा साधारण बात है। विशेषता तो उन ज्ञानों का आचरण है। अपनी त्रुटियों को देखना ही वास्तविक ज्ञान है।

प्राचीन नीतिकार अप्पयदीक्षित जी कहते हैं :—

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वज्ञान ज्ञानिनो विरलाः॥

अर्थ—नीतिशास्त्र के पण्डित, ज्योतिषी, चतुर्वेदी, सर्वशास्त्रज्ञाता और ब्रह्मज्ञानी बहुत मिलते हैं। परन्तु अपने अज्ञान को समझने वाले बिरले ही मिलते हैं।

ध्यान रहे ! अपना नित्य निरीक्षण, एकान्त-सेवन, नम्रता, साधु-गुरु में निष्ठा, वैराग्यादि साधन निरन्तर करते रहना चाहिये।

यदि आप प्राचीन संस्कृति, वेष-भूषा एवं रूढ़ि के समर्थक हैं !

यदि आप यह समझते हैं कि आधुनिक सभ्य अंग्रेजी-दाँ) लोगों में कुछ भी सार नहीं है। वे बिलकुल गये बीते हैं। उनके सारे ही आचरण बुरे हैं। कोट-बूट-पैंट-हैट पहनने वालों को यदि आप बिलकुल हेय दृष्टि से देखते हैं। पहले की रूढ़ि-रिवाज ही में सब कुछ था, आज कुछ भी नहीं है—यदि ऐसी आपकी धारणा है; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! किसी के प्रति एकदम दोषदृष्टि बनाना, यह अपनी उच्चता का द्योतक नहीं है। संसार में बिलकुल सार-हीन कोई समाज, कोई व्यक्ति नहीं होता। प्राचीन वेष-भूषा मण्डित, धर्म का चोंगा धारण किये भी, आज कितने ही आपको आचरण-हीन मिलेंगे; और कोट-पैंट धारण करने वाले एवं अंग्रेजियत से रहने वाले लाखों की संख्या में भारत में आज दृढ़ धर्म-प्रेमी, आध्यात्मवाद-निष्ठ भी मिलेंगे।

संस्कृति का तात्पर्य है शरीर मन की अच्छी क्रियायें ! अथवा परम्परागत आचरण या सभ्यता ।

अतएव यह मत समझिये कि सब अंग्रेजी पढ़ने वाले, और अंग्रेजी वेष-भूषा धारण करने वाले, धर्म-कर्म से एकदम गये बीते हैं।

ध्यान रहे! धर्म लुप्त हो रहा है। धर्म लुप्त हो रहा है! यह हल्ला मत कीजिये। धर्म का रूप नित्य अजर-अमर है। उसका न कभी लोप हुआ है और न वह भविष्य में कभी लुप्त होगा। धर्म ही पर तो संसार निर्भर है। हाँ! धर्म का बाहरी रूप बदलता रहता है, परन्तु वास्तविक आन्तरिक रूप अक्षुण्य रहता है।

ध्यान रहे! यदि कोई आज पढ़ा-लिखा युवक आपके गोबर-गणेश को नहीं मानता, बछिया के पूँछ पकड़ने से वैतरणी नदी पार होना नहीं मानता तथा अपने सद्पुरुषार्थ को त्यागकर दैव-गोसइयाँ, ईश्वर-अल्ला नहीं पुकारता, तो इसलिये उसको धर्म-हीन समझने का भ्रम मत कीजिये।

ध्यान रहे! धर्म का वास्तविक स्वरूप-साधु-संग, दया, अहिंसा, क्षमा, सत्य, विचार, धैर्य, अन्तर-बाहर की पवित्रता, इन्द्रिय मन का निग्रह, परोपकार, समता सर्वहित-चिन्तन आदि सदाचरण और स्वस्वरूप का यथार्थ ज्ञान है। इसको धारण करने वाला, कभी अधर्मी नहीं।

ध्यान रहे ! प्रत्येक आधुनिकता नवीनता के प्रति विद्वेष मत कीजिये । दो-दो चार कहने वाला चाहे बालक हो चाहे बूढ़ा, वह सत्यवादी माना जायगा । परन्तु दो-दो पाँच कहने वाले बुड्ढे-बालक दोनों झूठे गिने जायँगे । अतः पुराने-नये दोनों के कल्पित, हानिकारी रूढ़ियों-भ्रमों को त्यागकर दोनों के सत्यों को बिना ननु-नच किये ग्रहण कीजिये ।

ध्यान रहे ! प्राचीन संस्कृति, वेष-भूषा को आप स्थाई बनाये रखिये । इसमें मानवता का विशाल गौरव छिपा है । इसको त्यागकर, आप भी अंग्रेजियत की ओर मत मुड़िये । आचरण-द्वारा अपनी प्राचीन संस्कृति को ठोस बनाइये तथा अंग्रेजीमैन आधुनिक सभ्यों को भी प्रेम-समता तथा विवेक के बल पर सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा कीजिये ।

यदि आप आधुनिक सभ्य हैं !

यदि आप आधुनिक सभ्य हैं। अंग्रेजी तथा साइंस के ज्ञाता हैं। परन्तु यदि आप प्राचीन संस्कृति, वेष-भूषा रीति-रिवाज की मखौल उड़ाते हैं। किसी को धोती, चौबन्दी, कुरता-टोपी आदि पहने देखकर, उसको पिछड़ा हुआ असभ्य समझते हैं। पैंट, कमीज, टाई तथा बुशशर्ट ही में सारी सभ्यता देख रहे हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

दूसरे के धर्म-भक्ति के चिन्ह यज्ञोपवीत, कण्ठी, माला, चन्दन, चोटी इत्यादि को देखकर आप हँसते हैं। और देहाभिमान तथा मन के कुविचार वर्द्धक टाई, जुल्फी, अँगूठी तथा नाना शृङ्गार की वस्तु धारण करने में स्वयं लज्जा नहीं करते; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

यदि आप प्राचीन ऋषि-महर्षियों को तथा प्राचीन-अर्वाचीन सन्त-महात्माओं को अज्ञ समझते हैं। उनकी हँसी उड़ाते हैं। यदि आप की दृष्टि में आज के भौतिक-विज्ञानी ही सुखदायी ज्ञान के सागर हैं। यदि भौतिक-सुख ही वास्तविक सुख समझ कर आध्यात्मलक्ष्य, परमार्थिक सुख से आप दूर हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! भौतिकवाद में केवल ऊपरी तड़क-भड़क है, भीतर से वह खोखला है, एकदम सार-हीन है। इस भौतिकवाद रूप कूड़ा-कचड़ा में केवल ऊपर से स्वर्णिम-वरक लगा है। इसमें भीतर भङ्गार है, केवल ऊपर से चिकनाहट है।

ध्यान रहे ! यह अंग्रेजियत, यह विलासिता, जिसे आधुनिक सभ्यता कहते हैं। मनुष्य को आचरण-हीन बनाकर पतन के गर्त में डालने वाली है। पाश्चात्य-देशों का चारित्रिक पतन इस आधुनिक सभ्यता का ही परिणाम है।

ध्यान रहे। गन्दे सिनेमा, गन्दे होटल, सहशिक्षा, ऊटपटाँग घास-फूस मेढक-केंचुवा की पढ़ाई, अंग्रेजी पुस्तकों के गुड्डी-गुड्डे का प्रेम-वर्णन, गन्दे उपन्यास, प्रपंच पत्रिका, रात-दिन चाम, बाल तथा वस्त्रों का शृङ्गार—यही तो आधुनिक ज्ञान और सभ्यता है। यह आप को कहाँ ले जायगी ? तनिक गम्भीरता से विचारिये तो सही !

ध्यान रहे ! भोजन करने के पहले-पीछे हाथ-मुख-पैर आदि धोने की आवश्यकता न समझना। सब कपड़े तथा जूते पहने-पहने कुर्सी पर बैठे-बैठे,सबके साथ अण्डा मछली आदि खाना। खड़े-खड़े पेशाब करना। टट्टी करके कागजसे पोछ लेना या तनिक जलसे धोकर मिट्टी आदि का प्रयोग न करना। माता-पिता से आदर-अदब

त्याग कर, दम्पत्ति प्रेमी-प्रेमिका बनकर जहाँ-तहाँ टह-लना होटल में खाना तथा हास्पिटल में मर जाना-यही तो आधुनिक सभ्यता ठहरी। फिर भी इसी की ओर युवक आकर्षित हैं। कितना शोचनीय है ?

प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृति का किसी ने कैसा बढ़िया चित्र खींचा है—

सांस्कृतिक प्रातःकाल

"पहले प्रातः स्नान और फिर संध्या वंदन पूजा ध्यान।
धर्म यज्ञ करते गृहस्थ सब श्रद्धा से देते गोदान॥"

असांस्कृतिक प्रातःकाल

'दिन चढ़ आया खुली नींद अब, पीने लगे 'बेड टी लेट'[1]
हाथों में अखबार आगया मुंह में सुलग रही सिगरेट॥
काफी चाय सिगार[2] दोस्त को दे, फिर आप बनाते बाल
पाखाने के बाथरूम में, नहा-नहा हो रहे निहाल॥'

तब और अब

'पहलेथा स्वाध्याय शास्त्रका, पढ़े जा रहे अब अखबार।
तब थी कीर्तन कथा, मुकदमें अब झूठे कर रहे तयार।
पहले चरणामृत पीते थे, अब हो चला सुरा से प्यार।
तबहोता सत्कार अतिथिका, अबतो मिलती है फटकार'

ध्यान रहे ! यह आज की अंग्रेजी विद्या, अंग्रेजी वेष-भूषा तथा रहन-सहन आदि सब बातों में अंग्रे-

---

१—बिस्तर पर लेटे-लेटे ही चाय पीने लगे।

२—सिगरेट के समान पीने का एक मादक द्रव्य।

जियत बहुत हानिकारी हैं। क्योंकि इसमें अध्यात्मि-कता है ही नहीं। इससे बहुखर्चीलापन, विलास तथा मनोविकारों की अधिकता होती है। जिससे मनुष्य का पतन होता है।

ध्यान रहे! हमारा भारत देश अध्यात्मप्रधान है। भा = प्रकाश, या ज्ञान; रत = लीन। अर्थात् ज्ञान में लीन रहना ही 'भारत' का अर्थ है। यहाँ का मुख्य पुरुषार्थ मोक्ष है। इसकी सिद्धि ब्रह्मचर्य एवं मनो-निग्रह सेहोती है। ब्रह्मचर्य तथा मनोनिग्रह की सिद्धि सात्विकता से होती है, और वेष-भूषा, रहन-सहन सादा रखना इसमें मुख्य बात है। अतएव सादाजीवन-उच्चविचार इस सूत्र को कभी न भूलियेगा।

ध्यान रहे! धोती-लङ्गोटी पहनने में जो शुद्धता रख सकते हैं, पेंट-नेकर पहनने में नहीं। कण्ठी माला तथा यज्ञोपवीत पहनने में जो निर्मानता तथा धर्म का प्रभाव पड़कर आपका उत्थान हो सकता है; टाई पहनने से नहीं। चोटी रखाने में जो अच्छाई है, जुल्फी रखाने में नहीं। चौबन्दी-कुरती में जो सरलता-स्व-च्छता मितव्ययिता रख सकते हैं, वह फैंसी बुशशर्ट कोट-कमीज में नहीं। भारतीय-स्वदेशी बनने में जो आप का आदर्श है, यूरोपीय, अमेरिकन तथा रसिया बनने में नहीं। हिन्दी संस्कृत विद्या जैसे आपके जीवन में महत्त्वपूर्ण हैं; अंग्रेजी-उर्दू नहीं। आदर्श मानव

बनने में जो आपका हित समाया है, जैण्टुलमैन बनने में नहीं।

ध्यान रहे ! आप कभी न खाना खाइयेगा और न नास्ता ही कीजियेगा। आप सदैव भोजन करें या प्रसाद पावें तथा जलपान करें। क्योंकि जहाँ खाना या नाश्ता पकता है। वहाँ मुर्गे कुकुड़ूकूँ-कुकुड़ूकूँ करते हुए खाने के पास तक पहुँचते रहते हैं। वहाँ का न चौका शुद्ध रहता है और न बर्तन। बिना स्नान किये, बिना शुद्ध कपड़ा पहने तथा बिना हाथ पैर धोये खानसामा या बबर्ची खाना या नास्ता पकाता है। खाने और नास्ते में मुर्गे; अण्डे, सूअर, बकरे, मछली, मेढक आदि सब पकाये जाते हैं। और वहाँ पेशाब के छीटों से भींगे पेंट तथा जूते पहने अशुद्ध हाथों से बाबू लोग बिना हाथ-मुख धोये खाते हैं।

ध्यान रहे ! जहाँ भोजन, प्रसाद या जलपान सिद्ध किया जाता है। वहाँ चौका-बर्तन सब शुद्ध तथा दूर तक पृथ्वी शुद्ध रहती है। स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर पवित्र भण्डारी अन्न, साक, मूल, दूध इत्यादि सात्विक एवं निरामिष भोजन सिद्ध करता है। जहाँ मुर्गे जैसे अशुद्ध प्राणी का शब्द तक नहीं सुन पड़ता। वहाँ जूतादि निकाल कर हाथ-पैर-मुख आदि धोकर शुद्धता पूर्वक भोजन, प्रसाद तथा जलपान पाया जाता है।

यदि आप हिन्दू या गोसेवक हैं !

यदि आप हिंसा करते हैं तथा हीन कर्म करते हैं, तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! "हिंसयादूयते यस्मात् हिन्दूरित्य-भिधीयते ।" जो हिंसा से दूर रहता है, उसी को हिन्दू कहा जाता है तथा "हीनं च दूषयत्येष हिन्दू-रित्यभिधीयते ।" हिन्दू वह है, जो हीन-कर्मों से दूर रहता है ।

ध्यान रहे ! यदि आप हिन्दू या गो सेवक हैं, तो आज से बूचड़खानों के भीषण हत्या-द्वारा प्राप्त हुए चाम के जूते, बेग बिस्तर-बन्द तथा आँगे इत्यादि का सर्वथा परित्याग कर दीजिये । अपने मौत से मरे हुए पशुओं के चाम के जूते पहनिये तथा कपड़े-रबर आदि के पहनिये ।

ध्यान रहे ! अपने बूढ़े बैल-भैंसा, बूढ़ी गाय-भैंस को मत बेचिये । उनकी जीवनपर्यन्त सेवा कीजिये । कसाई से अधिक वे कसाई हैं, जो अपने पशुओं को जान बूझकर कसाइयों के या कसाइयों के एजेन्टों के हाथ में बेंचते हैं ।

यदि आप सम्प्रदायी, पन्थी या समाजी हैं !

यदि आप अपने सम्प्रदायाचार्य, पन्थाचार्य तथा समाजाचार्य के अतिरिक्त अन्य आचार्यों को एकदम हीन, वेवकूफ तथा सर्वथा भूले हुए समझते हैं। यदि आप अपने वेद, कुरान, बाइबिल तथा अपने सम्प्रदाय-पन्थ-समाज की पुस्तकों के आगे अन्य सबके धार्मिक ग्रन्थों को अत्यन्त भ्रमात्मक, अज्ञानपूर्ण तुच्छ समझते हैं; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

ध्यान रहे ! संसार के समस्त धार्मिकमत, पथ, सम्प्रदाय, समाज किसी-न-किसी महापुरुष-द्वारा चलाये गये हैं। अतएव सभी मत-पन्थों में सार है। उनके द्वारा भी जीवों के कल्याण के लिये प्रयत्न किये जाते हैं। सभी मत-पथ-सम्प्रदाय-समाज में एक अपनी संस्कृति है, एक अपने नियम, आचार-विचार तथा धर्म-भक्ति का विधान है। दूसरे को हेय देखने का आपका कोई अधिकार नहीं है।

ध्यान रहे ! संसार के सारे धार्मिक मतावलम्बी यदि अपना धर्म-प्रचार का कार्य त्यागकर केवल आपके अधिकार में धर्म-प्रचार का कार्य कर दें (आप

वैष्णव आदि सम्प्रदायी हैं, कबीरपन्थी आदि पन्थी हैं तथा आर्यसमाजी-ब्रह्मसमाजी-मुनिसमाजी आदि समाजी हैं।

चाहे हिन्दू, ईसाई, मुसलमान या यहूदी हों। बौद्ध, जैन या वैदिक हों। आर्यसमाजी, वैष्णव या कबीर-पन्थी हों) तो आप अपने धर्म-प्रचार-द्वारा सारे संसार को नहीं सम्हाल सकते।

ध्यान रहे ! संसार के समस्त मानव एक ही मत के अधिकारी नहीं हो सकते। देश, काल, वातावरण तथा अन्तःकरण-भेद से सबके विचार में अवश्य कुछ-न-कुछ भेद रहेगा। जिस संस्कार में मनुष्य पला होता है, उसको वही सत्य दिखता है। अपने चश्मा के रंग-अनुसार सारे संसार को सभी देखना चाहते हैं।

ध्यान रहे ! राम, कृष्ण, शिव, ओहम्, कबीर, बुद्ध, ईशा, खुदा, अर्हंत इत्यादि नामों का जाप करने वाले; उन की जड़-मूर्तियों को पूजने वाले, तीर्थों में भ्रमण करने वाले आदि सब एकदम गये-गुजरे तथा कुमार्गी नहीं हैं। इन सबों में भी धर्म का पुट है। भोग-विलास, अबोध, पारख-हीनता से तो अच्छा है कि वह किसी नाम-रूप द्वारा किसी सत्-पुरुष का स्मरण करता है। इस प्रकार करते-करते धर्म में लगे-लगे अन्तःकरण कोमल तथा स्वच्छ होगा और कभी विवेकी-पारखी सन्तों की संगत से उनको बोध भी हो सकता है। परन्तु कुछ न करने वाले की तो "दोनों दीन से गये पाड़े। हलुवे भये न माड़े॥" वाली दशा हो जाती है। कोई मनुष्य खाट पर बैठा माला लेकर

जापकर रहा था। दूसरे ने देखकर कहा—'अरे यार ! खाट पर बैठकर जाप नहीं करना चाहिये।' जाप करने वाले ने पूछा—'आप जाप करते है कि नहीं ?' उसने उत्तर दिया–'हम तो जाप नहीं करते।' जाप करने वाले ने कहा—'तुमसे तो हम अच्छे ही हैं, नहीं पृथ्वी पर तो खाट पर तो करते हैं। कुछ न करने की अपेक्षा, अपनी सूझ-बूझ के अनुसार कुछ धर्म-नियम का पालन करना तो अच्छा ही है।'

ध्यान रहे ! ईसाई-मुसलमान आदि एकदम तुच्छ नहीं है। पापपूर्ण हिंसा-मांस-भक्षण के अतिरिक्त उनमें भी कई आचार-विचार नियम-विधान गम्भीर हैं। दूर से किसी को तुच्छ न गिनो।

ध्यान रहे ? आपका भारतीयदर्शन और धर्माचरण सर्वोच्च है। भारतीयदर्शन धर्म एवं हृदय-विशालता की तुलना संसार में नहीं है। पूर्ण अहिंसा, निर्विषय-मार्ग भारत में ही है। अतएव अपने भारतीय धर्म का पालन करो। परन्तु दूसरे को तुच्छ न देखो। किसी को तुच्छ न देखना भी, भारतीय-धर्म एवं भारतीयों की हृदय-विशालता है।

ध्यान रहे ! अनधिकार पूर्वक यह किसी से मत कहो कि "तुम्हारे सोने में खोटा मिला है।" पहले उसे कसौटी दो, कसने का प्रकार बतलाओ। फिर वह कसौटी से कसकर स्वय जान लेगा कि "हमारे

सोना में खोटा मिला है।" और फिर वह सच्चे सोना की खोज करेगा।

ध्यान रहे ! आपके जीवन में जितने मानव मिलें। उनसे ऐसा मधुर बर्ताव करो तथा ऐसा मधुर वाणी का उच्चारण करो कि किसी प्रकार भी, उनका प्रेम धर्माचरण में बढ़े। भेद-बुद्धि डालना सरल है, परन्तु धर्माचरण में नियुक्त करना कठिन।

ध्यान रहे ! जो व्यक्ति आप से मिले, उसके धर्माचरण में भेद-बुद्धि न डालो। उसके मत का खण्डन न करो, उसका खण्डन करने से उसे ठोकर लगेगा, उसका अपमान होगा, जो अधर्म है, तथा आपको वह बुरा समझकर हट जायगा। भेद-बुद्धि डालने से हो सकता है वह सत्य तो ग्रहण न कर सके और जो कुछ पहले धर्माचरण करता रहा हो, वह भी छोड़ बैठे। अतएव उसके मान्यतानुसार ही धर्म की प्रशंसा करके, उसे उसी के धर्म में लगने का प्रोत्साहन दो। ऐसा करने से वह धर्म में लगा रहेगा, आप से हृदय-मिलाप एवं प्रेम हो जायगा। फिर आप अपने सत्य को उसे समझा सकेंगे।

सद्गुरु श्रीरामरहस साहेब कहते हैं—

जेहि पर जहाँ बंधावा होई। ताहि सराहि मिलै भल सोई।
जेहि ते तेहि मत होई प्रऊड़ा। मिलि के पारख लावे ऊढ़ा।

काहे ते शिष्य मेल विधि। उचटै नहिं सो जीव।
वह तू जमा सो एक ही। ताते मेलहु कीव॥
मिलि लखेते उचटै नहीं। एकता सुख की खानि।
सत्य शब्द टकसार विधि। निर्णय कही बखानि॥
(पंचग्रन्थी)

वह सत्य शब्द है—
दादा भाई बाप के लेखों, चरणन होइहौं बन्दा।
अबकी पुरिया जो निरुवारे, सो जन सदा अनन्दा॥

ध्यान रहे। स्वमत-प्रचार के तृष्णालु तथा स्व-मताभिमानी को हमारी बात "लीपापोती" जैसी लगेगी। "सब धान साढ़े बाइस पसेरी" जैसा प्रतीत होगा। परन्तु दूरदर्शी, परिणामसोची, गम्भीर एवं निर्मानी पुरुष को उपर्युक्त बातें अमृतमय लगेंगी।

ध्यान रहे! सबकी खिचड़ी एक में पकाने के लिये हम नहीं कहते। सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिये। परन्तु अधिकारी के लिये ही निर्णय ठीक है। सार्वजनिक समाज के लिये प्रेम-समता तथा सर्वधर्म-समन्वय ही आवश्यक है।

ध्यान रहे! आप की शुष्क दार्शनिकता, आप का कोरा तत्त्व-निर्णय, आपका बहुत बड़े ग्रन्थ या महा-पुरुष का अनुगामी होना—आपकी उच्चता का द्योतक नहीं है। उच्चता का द्योतक है, आपकी हृदय-विशा-

लता, आपका सर्व-धर्म समन्वय, एकता, प्रेम तथा मानव मात्र या जीव मात्र के प्रति मैत्री, करुणा एवं मुदिता का सुन्दर भाव।

ध्यान रहे ! सबलोग अपने को बड़े घराने या बड़े खानदान के मानते हैं। ईशाई, मुसलमान, यहूदी, बौद्ध, जैन, वैष्णव, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, कबीर-पंथी, द्वैती, अद्वैती, विशिष्टाद्वैती—कौन अपने को छोटा गिनता हैं। अर्थात् सभी अपने को बड़ा मानते हैं। परन्तु वास्तव में बड़ा वह है, जिसका हृदय विशाल है। जो सबका आदर करता है। जिसका आचरण उच्च है। जो विवेक, वैराग्य, भक्ति, धर्मा-चरण से पूर्ण है।

सद्‌गुरु कबीर का महावाक्य है—

कारे बड़े कुल ऊपजे, जोरे बड़ी बुधि नाहिं।
जैसे फूल उजारि का, मिथ्या लगि झरि जाहिं॥
(बीजक)

ध्यान रहे! दर्शन, सिद्धान्त, मत, विचार तथा थोड़ा आचरण भी भिन्न होने के नाते, प्रेमकी भिन्नता न करो। सिद्धान्त-भेद रहना निश्चित है, अतः सबसे प्रेम करो।

ध्यान रहे ! गीताकार ने गीता में जो श्रीकृष्ण के शरीर में विश्वरूप दर्शन की कल्पना की है उसमें

भक्ति आदि धर्म का कोई ज्ञान नहीं है,तो विचारिये ! आप मानव-तन पाकर क्या किये ?

यदि आप के तन, मन, धन परोपकार, दीनों की रक्षा तथा सन्त सेवा में नहीं लगे। यदि कभी आप दुखियों के आँसू नहीं पोंछे। यदि सबसे हिलमिल के आप नहीं रहे। यदि मानव-तन पाकर भी, आप मानवता नहीं धारणा किये; तो विचारिये ! आप किधर जा रहे हैं ?

किसी ने कैसा अच्छा कहा है—

जोसे हमदर्दी नहीं जिसमें, वह इन्सान नहीं।
जाहिरा सूरते आदम है, मगर जान नहीं ॥

हाली साहब कहते हैं—

जानवर आदमी फरिश्ता खुदा।
आदमी की भी हैं सैकड़ों किस्में ॥
हो फरिस्ता तो भी नहीं इन्सां।
दर्द[1] थोड़ा बहुत न हो जिसमें ॥
फरिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है मिहनत ज्यादा ॥

नसीम कहते हैं—

इश्क के रुतबे के आगे आसमां भी पस्त है।
सर झुकाया है फरिश्तों ने बसर के सामने ॥

१—दया।

तात्पर्य यह कि मनुष्य प्रेमधनी होने के नाते उसके सामने आसमान और फरिश्तों को भी झुकना पड़ा। भाव यह कि यदि मानव में मानवता हो, तो इससे बड़ा कोई नहीं।

ध्यान रहे! जब तक आप में धर्म-भक्ति नहीं है। अच्छे-अच्छे आचरण तथा सद्गुण नहीं हैं। तब तक आप मानव आकृति में होते हुए भी, आप की प्रकृति पशु की है।

ध्यान रहे! संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि का विद्वान् हो जाने से। बहुत उज्ज्वल ऊंचा-ऊंचा पोशाक धारण कर लेने से। डिप्टी, कलक्टर, मिनिस्टर, प्रान्तपति या राष्ट्रपति हो जाने से। कवि, प्रवक्ता, लेखक, विज्ञानी, यशस्वी हो जाने से। शरीर से बलवान, बुद्धि में चर्ब हो जाने से कोई सच्चा मनुष्य नहीं कहला सकता। इसके लिये शुभाचरण, सद्गुण परोपकार, सर्व जीवों के प्रति दया प्रेम तथा धर्म-भक्ति आदि को ही जीवन में धारण करना अनिवार्य है।

श्री विश्वेश्वर प्रेस; बुलानाला, वाराणसी में मुद्रित